

प्राचीन-काव्य-कुसुमाकर

पहिले इसे पढ़िए

आजकल जाली और नकली किताबें बहुत बिक रही हैं इसलिए विद्यार्थियों को चाहिए कि जिस किसी भी दूकानदार से पुस्तक खरीदें उसकी मुहर किताब के ऊपर लगवा लें और कैशमीमो साथ लें। कैशमीमो पर भी तारीख और किताब का नाम अंग्रेजी, हिन्दी या उर्दू जो भाषा छात्र जानते हों, उसी में लिखवाएँ ताकि कोई दूकानदार गलत नाम और गलत तारीख लिखकर विद्यार्थी को धोखा न दे सके। जो विद्यार्थी ऐसा नहीं करेंगे उन्हें जाली और नकली किताब के जुरम में बिना कैशमीमो और मुहर के खरीद लेने से पुलिस पकड़ लेगी।

प्राचीन-काव्य-कुसुमाकर

Prāchin - Kāvya - Kusumakara

सम्पादक

पंडित बालासहाय शास्त्री
यूनिवर्सिटी लायब्रेरी, शिमला ।

For Mehar Chānd Lāchhman Dās

प्रकाशक

मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास
कूचा चेलां, दरियागंज
दिल्ली ।

Publisher

Meharchand
Lakshman
Kucha Chela
Darya Gang,

(Bs 1/12/- pp. 176)

१९५२
1952

301-131
3 52 P
14608

वक्तव्य

काव्य

‘रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् ।’

रमणीय अर्थ को प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य कहलाता है । रमणीय वह है, जो मन में रमण करे अर्थात् जिसे पढ़कर मनुष्य का हृदय उसी में लीन हो जाय । आनन्द की उत्पादक रमणीयता है, और वह आनन्द अलौकिक है । कविता को छोड़कर और कहीं भी उस आनन्द की उपलब्धि नहीं हो सकती । यों तो प्राणि-मात्र की उत्पत्ति आनन्द से है परन्तु कविता का आनन्द ही कुछ और है । वह निरुपयोगी नहीं, लाभदायक है । उससे मनोभावों में पवित्रता का संचार होता है; धर्म, अर्थ काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है । कविता मनोभावों का प्रतिबिम्ब है, जो शब्दों के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होता है । जब तक भावों की प्रेरणा से कोई मानसिक उद्गार नहीं निकलता तब तक हम उसे कविता नहीं कह सकते, चाहे वह पद्य में ही क्यों न कहा व लिखा जाय । गद्य और पद्य तो केवल कविता के आवरण-मात्र हैं, जिनके विषय में एक यही मतभेद हो सकता है कि कौन सुन्दर और उपयोगी है ।

किसी पदार्थ, दृश्य या अवस्था आदि से उत्पन्न हुए प्रेम, हर्ष, शोक, क्रोध आदि भावों से प्रभावित होकर मनुष्य जो-कुछ कहता है, वही कविता है । और वही कविता श्रोताओं के हृदयों को आकर्षित

कर सकती है। कवि की प्रवृत्ति प्रायः उन्हीं विषयों की ओर होती है। जो सुन्दर, सत्य और कल्याणकारी हैं। तभी तो विद्वज्जनों ने कवि की कृति को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के शब्दों से सम्बोधित किया है। इसमें जहाँ आनन्द का उद्देक है, वहाँ मनुष्य को उपदेश भी प्राप्त होता है। तभी तो 'गुप्त' जी ने अपनी एक कविता में कहा है—

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए ॥
क्यों आज रामचरित-मानस सब कहीं सम्मान्य है।
सत्काव्ययुत उसमें परम आदर्श का प्राधान्य है ॥

कविता के विषय में तनिक पाश्चात्य विद्वानों की भी सम्मति देखिए, वे क्या कहते हैं? कविवर शैली ने कहा है—

“Poetry preserves from decay the visitations of Divinity in man.” अर्थात् कविता मनुष्य में दिव्य भाव की प्रगतियों को निर्वल पड़ने से बचाती है।

कविवर एट्स ने कहा है—“Poetry is the ritual of the marriage of Heaven and Earth.” अर्थात् कविता पृथ्वी और स्वर्ग का विवाह-संस्कार है।

कुछ भी हो, हमें यह मानना ही पड़ेगा कि कविता हृदय-रूपी समुद्र से उत्पन्न होने वाले उज्ज्वल तथा अमूल्य मोती हैं, जिन्हें प्राप्त करने के लिए अत्यन्त परिश्रम की आवश्यकता है। गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं—

हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाती शारद कहहिं सुजाना ॥
जो बरसइ वर वारि-विचारू। होहि कवित मुक्तामणि चारू ॥

अर्थात्—मनुष्य का हृदय समुद्र है और बुद्धि उसमें सीप के सदृश है । सरस्वती स्वाति की बूँद है । जब सरस्वती-रूपी स्वाति की वर्षा होती है और उसकी बूँद हृदय-रूपी समुद्र की बुद्धि-रूपी सीप में पड़ती है, तब कविता-रूपी मोती बनते हैं । यह है वास्तविक कविता का स्वरूप !

कवि कौन ।

कवि सांसारिक सौन्दर्य के मर्म का ज्ञाता है, जिसके द्वारा सृष्टि का सौन्दर्य देखा जाता है । कवि का भोजन ही सौन्दर्य है । जब वह उससे तृप्त हो उन्मादी बनकर कुछ प्रलाप करता है, वही उसकी कविता है । वैज्ञानिक और कवि में महान् अन्तर है । वैज्ञानिक तो मस्तिष्क का सम्राट् है और कवि हृदय का । हृदयहीन मनुष्य कवि हो ही नहीं सकता । वैसे तो हृदय सबके होता है परन्तु यहाँ हृदयहीन का तात्पर्य उन मनुष्यों से है, जो हृदय के मर्म को समझ ही नहीं पाते । हृदय की बातों को समझना और उसको संसार के आगे प्रत्यक्ष रूप में प्रकट करना कवि का ही काम है ।

मानव-हृदय में आन्तरिक तथा बाह्य प्रभावों से उत्पन्न हुई नाना प्रकार की वीचिमाला के उत्थान, पतन, सम्मिलन तथा संघर्षण से जो संगीत उत्पन्न होता है उस पर सुग्ध होने वाला एकमात्र कवि ही है । अपने प्रियतम ऋतुराज के आने पर प्रेम से उन्मत्त हुई श्यामा जब आम्रमंजरी से झुकी हुई डालियों पर थिरक-थिरककर गाने लगती है तो कवि की हृदय-वीणा स्वयमेव मंकृत हो उठती है—

को बचिहै यह बैरी बसन्त पै, आवत जो बन आग लगावत ।
बौरत ही करि डारत बौरी , भरे विष बैरी रसाल कहावत ॥

हैं हैं करेजन की किरचै, 'कवि देव जू' कोकिल बैन सुनावत ।
वीर की सौ बलवीर बिना, उड़ि जायगो प्रान अवीर उड़ावत ॥

पूर्णचन्द्र का प्रतिबिम्ब जब निर्मल जलवाहिनी तरणिसुता की श्यामवर्ण तरंगों में आकर खेल खेलता है तो कवि की आँखें अलौकिक ज्योति से परिपूर्ण हो जाती हैं और वह उनमें नाना प्रकार की कल्पनाओं का चित्र खींचना आरम्भ कर देता है ।

चन्द प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकाओ,
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो ।
मनु हरि-दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो;
कै तरंग कर मुकुर पिये शोभित छबि छाओ ।
कै रास रमन में हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है;
कै जल-उर हरि-मूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है ॥

श्रावण मास में पावस-दल की घनघोर घटाओं के गर्जन से उल्लसित होकर जब मयूर-गण नाचने लगते हैं तो कवि का मन-मयूर उनसे पूर्व ही नृत्य करना आरम्भ कर देता है—

सेनापति, उनये नये जलद सावन के,
चारिहूँ दिसान घुमरत भरे तोइ के ।
सोभा सरसाने न बखाने जात कहूँ भाँति,
आते हैं पहार मानो काजर के ढोई के ॥
घन सौ गगन छयो, तिमिर सघन भयो,
देखि न परत गयो मानो रवि खोइ के ।
चारि मास भरि घोर निसा को भरम करि,
मेरे जान याहि ते रहत हरि सोइ के ॥

त्रिविध समीर के झोंकों से झूलते हुए सुमन-गुच्छ के साथ कल्लोल करती हुई भ्रमरावलि की गुञ्जार को सुनकर कवि का अलि-हृदय भी उसी के साथ गूँजने लगता है और अकस्मात् उसके मुख से निकल पड़ता है—

कैसे भ्रमर चुम्बन करत ।

नागकेसरि को सुअंकन रहसिहि भरत ॥

सिरसफूलन कान धरि वनयुवति मन को हरत ।

देत शोभा परम सुन्दर सरस ऋतु लखि परत ॥

तात्पर्य यह है कि कवि के श्रवणों में अलौकिक श्रवण-शक्ति और नेत्रों में अद्भुत ज्योति होती है। तभी तो सांसारिक जन-समुदाय कभी-कभी उन्हें पागल की पदवी देने पर बाध्य हो जाता है। वास्तव में पागल, प्रेमी और कवि की दशा एक-सी ही होती है। तभी तो महा-कवि शेक्सपियर ने एक स्थान पर कहा है—

The lunatic, the lover and the poet,
Are of imagination all compact.

अर्थात् पागल, प्रेमी और कवि—इनकी कल्पनाएँ एक-सी होती हैं। अस्तु, महर्षि नारद के शब्दों में कवि की परिभाषा को लिखकर हम अपने इस विषय को समाप्त करते हैं। महर्षि ने 'संगीत-मकरन्द' में लिखा है—

शुचिर्दलः शान्तः सुजनविनतः सूनृतपरः

कलावेदी विद्वानतिमृदुपतः काव्यचतुरः ।

रसज्ञो दैवज्ञः सरसहृदयः सत्कुलभवः

शुभाकारश्छन्दोगुणगणविवेकी स च कविः ॥

प्रस्तुत संग्रह

कुसुमाकर में हमने उपरोक्त गुणों से युक्त महाकवियों की कविता का संग्रह किया है—कबीर, सूर, तुलसी आदि। यद्यपि संग्रहों की तो साहित्य-संसार में कोई कमी नहीं परन्तु हमने यत्न किया है कि हम इसमें अपने पाठकों को उनके उन नये रत्नों का दिग्दर्शन कराएँ जो कि शायद अभी उनके दृष्टिगोचर न हुए हों।

उपर्युक्त कवियों का वर्णन हमने उनके परिचय में ही यथेष्ट दे दिया है अतः यहाँ और अधिक लिखना केवल पाठकों का समय ही नष्ट करना है। अन्त में अब और विस्तार में न जाते हुए हम केवल इतना ही कहकर अपने वक्तव्य को समाप्त करते हैं कि पाठ्य-पुस्तक होने के कारण हमने अपने इस संग्रह को शृङ्गार-रस से अछूता ही रक्खा है।

बालासहाय शास्त्री

कवियों की सूची

चन्दबरदाई	-	-	१
कबीर	-	-	१५
जायसी	-	-	३३
सूरदास	-	-	४७
गोस्वामी तुलसीदास	-	-	६५
रहीम	-	-	८७
रसखान	-	-	९९
केशव	-	-	१०७
भूषण	-	-	११७
विहारी	-	-	१२६
नरोत्तमदास	-	-	१३६
मीराबाई	-	-	१४६
मतिराम	-	-	१५७
चयनिका	-	-	१६५

चन्दरदाई

जीवन-परिचय

महाकवि चन्द का जन्म सन् ११४८ में लाहौर में हुआ था। इस तरह उसे पंजाब का एक श्रेष्ठ महाकवि कहा जा सकता है। कहते हैं कि चन्द और महाराज पृथ्वीराज का जन्म एक ही तिथि को हुआ था। वे दोनों आजीवन घनिष्ठ मित्र रहे और दोनों का देहान्त भी एक ही साथ हुआ।

यह भी प्रसिद्ध है कि पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में चन्द उसके साथ नहीं था। वह उस समय देवी के मन्दिर में बैठकर काव्य-रचना कर रहा था। युद्ध में पृथ्वीराज हार गया और शहाबुद्दीन ने उसे कैद कर लिया। पृथ्वीराज को गज़नी ले जाया गया। चन्द को जब यह समाचार मिला तब उसने अपना रासो अपने पुत्र जलह के सुपुर्द कर दिया और गज़नी के लिए रवाना हो गया।

चन्द के छप्पय विशेष प्रसिद्ध हैं। 'छप्पय' लिखने में इतनी सफलता अन्य किसी कवि को नहीं मिली। उसमें संयुक्ताक्षरों की अधिकता है और शैली प्राचीन होने के कारण वह दुरूह भी है। चन्द की कविता में 'उदू' और 'फारसो' के भी काफ़ी शब्द प्रयुक्त हुए हैं। पृथ्वीराजरासो की प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया जाने लगा है।

पद्मावत-विवाह-कथा

दूहा

पूरव दिस गढ़ गढ़नपति, समुद्र सिखर अति दुग्ग ।
तहँ सु विजय सुर राजपति, जादू कुलह अभग्ग ॥१॥
हसम हयगगय देस अति, पति सायर म्रज्जाद ।
प्रवल भूप सेवहिँ सकल, धुनि निसाँन बहु साद ॥२॥

कवित्त

धुनि निसाँन बहु साद, नाद मुरपंच वजत दिन ।
दस हजार हय चढ़त, हेम नग जटित साज तिन ॥
गज असंख गज पतिय, मुहर सेना तिय संखह ।
इक नायक कर धरी, पिनाक धर भर रज रक्खह ॥
दस पुत्र पुत्रिय एक सम, रथ सुरंग उम्मर डमर ।
भंडार लक्षिय अगिनत पदम, सो पदमसेन कूँवर सुघर ॥३॥

दूहा

पदमसेन कूँवर सुघर, ता घर नारि मुजान ।
ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहुँ कला ससिभान ॥४॥

कवित्त

मनहुँ कला ससिभान, कला सोलह सो बन्निय ।
वाल वेस ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय ॥

विगसि कमल मृग भ्रमर, बैन खंजन मृग लुट्टिय ।
 हीर कीर अरु बिम्ब, मोति नखसिख अहिघुट्टिय ॥
 छत्रपति गयंद हरिहंस गति, बिह बनाय संचै सचिय ।
 पदमिनिय रूप पद्मावतिय, मनहु काम कामिनि रचिय ॥५॥

दूहा

मनहु काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रास ।
 पशु पंछी सब मोहिनी, सुर नर मुनिवर पास ॥६॥
 सामुद्रिक लच्छन सकल, चौसठि कला सुजान ।
 जानि चतुर दस अंगषट, रति बसन्त परमान ॥७॥
 सखियन सँग खेलत फिरत, महलनि बाग निवास ।
 कीर इक्क दिष्य नयन, तब मन भयौ हुलास ॥८॥

कवित्त

मन अति भयौ हुलास, विगसि जनु कोक किरन रवि ।
 अरुन अधर तिय सधर, बिम्ब फल जानि कीर छवि ॥
 यह चाहत चख चक्रित, उह जु तक्किय भरपि भर ।
 चंच चहुट्टिय लोभ, लियौ तब गहित अप्प कर ॥
 हरषत आनन्द मन महि हुलस, लै जु महल भीतर गई ।
 पंजर अनूप नग मनि जटित, सो तिहि मँह रषत भई ॥९॥

दूहा

तिही महल रषत भइय, गई खेल सब भुल्ल ।
 चित्त चहुँट्टयो कीर सो, राँम पदावत फुल्ल ॥१०॥
 कीर कुंवरि तन निरखि, दिखिनखसिख लौ यह रूप ।
 करता करी बनाय कै, यह पदमिनी सरूप ॥११॥

कवित्त

कुट्टिल केस सुदेश, पौहप रचियत पिक्क सद ।
 कमल गंध वय संघ, हंस गति चलह मंद मद ॥
 सेत वस्त्र सोहै सरीर, नख स्वाति बुन्द जस ।
 भमर भँवहि भुल्लाहि सुभाव, मकरन्द वास रस ॥
 नैन निरखि सुख पाय सुक, यह सदिन मूरति रचिय ।
 उमा प्रसाद हर हेरियत, मिलहि राज प्रथिराज जिय ॥१२॥

दूहा

सुक समीप मन कुँवरि को, लग्यौ बचन के हेत ।
 अति विचित्र पंडित सुआ, कथत जु कथा अमेत ॥१३॥

गाथा

पुच्छत बयन सुवाले, उच्चरिय कीर सच्च सच्चाये ।
 कवन नाम तुम देस, कवन यंद करै परवेश ॥१४॥
 उच्चरिय कीर सुनि बयनं, हिन्दवान दिल्ली गढ़ अयनं ।
 तहाँ इन्द्र अवतार चहुवांन, तहँ प्रथिराजह सूर सुभारं ॥१५॥

पद्वरी

पदमावतीहि कुँवरि सँघत्त, दुज कथा कहत सुनि सुनि सुवत्त ॥१६॥
 हिन्दवांन थान उत्तम सुदेस, तहँ उदत द्रुग दिल्ली सुदेस ॥१७॥
 संभरि नरेस चहुवांन थांन, प्रथिराज तहाँ राजंत भांन ॥१८॥
 बैसह बरीस षोड़स नरिंद, आजान बाहु भुअ लोक यंद ॥१९॥
 संभरि नरेश सोमेसपूत, देवंत रूप अवतार धूत ॥२०॥
 सामंत सूर सव्वै अपार, भूजांन भीम जिम सार भार ॥२१॥

जिहि पकरि साह साहाब लीन, तिहुँ बेर करिय पानीप हीन ॥२२॥
 सिंगिनि सुसह गुन चढ़ि जँजीर, चुक्कै न सबद बेधंत तीर ॥२३॥
 बल बैन करन जिम दाँन मान, सत सहस सील हरिचँद समान ॥२४॥
 साहस सुक्रंम विक्रम जुवीर, दाँनव सुमत्त अवतार धीर ॥२५॥
 दिस च्यार जाँनि सब कला भूप, कंदूप्प जाँनि अवतार रूप ॥२६॥

दूहा

कामदेव अवतार हुआ, सुअ सोमेसर नंद ।
 सहस किरन भलहल कमल, रिति समीप बर बिंद ॥२७॥
 सुनत श्रवन प्रथिराज जस, उमग बाल विधि अंग ।
 तन मन हित चहुवाँन पर, बस्यौ सुरत्तह रंग ॥२८॥
 बेस बिती ससिता सकल, आगम कियौ बसंत ।
 मात पिता चिन्ता भई, सोधि जुगति कौ कंत ॥२९॥

कवित्त

सोधि जुगति कौ कंत, कियौ तब चित्त चहौँ दिस ।
 लग्यौ विप्र गुर बोल, कही समभाय बात तस ॥
 नर नरिंद नरपति, बड़े गढ़ दुग्ग असेसह ।
 सीलवन्त कुल सुद्ध, देहु कन्या सुनरेसह ॥
 तब चलन देहु दुज्जह लगन, सगुन बंद दिय अप्प तन ।
 आनंद उछाह समुदह सिधर, बलत नह नीसांद घन ॥३०॥

दूहा

सवालष उत्तर सयल, कमऊँ गढ़ दूरंग ।
 राजत राज कुमोदमनि, हय गय द्विच्च अभंग ॥३१॥

नारकेलि फल परिठ दुज, चौक पूरी मनि मुत्ति ।

दर्ई जु कन्या बचन बर, अति आनन्द करि जुत्ति ॥३२॥

भुजंग प्रयात

विहसिं वरं लगन लिन्नौ नरिदं, बजी द्वारद्वारं सु आनंद दुंदं ३३
गढनं गढं पत्तिसव बोलि नुंत्ते, आइयं भूप सव कटुं व सुत्ते ३४
चले दस सहस्सं असव्वार दानं, परं पूरीय पैदलं तेजु थानं ३५
मत्तमदगलितं सै पंच दंती, मनो सांम पाहार वुग पंति पंती ३६
चले अग्गितेजी जुतत्ते तुखारं, चौवरं चौरासी जु साकत्ति भारं ३७
कंठ नगं नूपं अनोपं सु लालं, रंगं पंच रंगं ढलक्कंत ढालं ३८
पंच सुरं सावह वाजित्र वाजं, सहस सहनाय भ्रग मोहि राजं ३९
समुद सिर सिखर उच्छाह छाहं, रचित मंडपं तोरनं श्रीयगाहं ४०
पदमावती विलम्बिवर वाल वेली, कही कीर सो बात तव हो अकेली ४१
भटं जाहुं तुम्ह कीर दिली मुदेसं, वरं चहुवांन जुआनौ नरेसं ४२

दूहा

आनो तुम्ह चहुवान वर अरु कहि इहै सदेस ।

सांस सरीरहि जो रहे प्रिय प्रथिराज नरेस ॥४३॥

कवित्त

प्रिय प्रथिराज नरेस, जोग लिखि कगार दिन्नौ ।

लगुन वरग रचि सरव, दिन द्वादस ससि लिन्नौ ॥

सैं अरु ग्यारह तीस, साष संवत परमानह ।

जोपित्री कुल सुद्ध, वरनि वरि रण्यहु प्रानह ॥

दिप्पंत दिष्ट उच्चरिय, वर इक पलक विलम्ब न कारिय ।

अलगार रयन दिन पंचमहि, ज्यों रुकमनि कन्हर वरिय ॥४४॥

दूहा

ज्यों रुकमानि कन्हार वरी, ज्यों वरि संभरि कांत ।
 शिव मँडप पच्छिम दिसा, पूजि समय स प्रांत ॥४५॥
 लै पत्री सुक यों चलयौ, उड्यौ गगनि गहि बाव ।
 जहँ दिल्ली प्रथिराज नर, अट्ट जांम में जाव ॥४६॥
 दिय कगार नृप राज कर, पुलि बंचिय प्रथिराज ।
 सुक देखत मन में हँसे, कियो चलन को साज ॥४७॥

कवित्त

उहै घरी उहि पलनि, उहै दिन वेर उहै सजि ।
 सकल सूर सामंत, लिये सब बोलि बंब बजि ॥
 अरु कविचंद अनूप, रूप बरस बर कह बहु ।
 और सेन सब पच्छ, सहस सेना तिय सषहु ॥
 चामंडराय दिल्ली धरह, गढ़पति करि गढ़ भार दिय ।
 अलगार राज प्रथिराज तब, पूरब दिस तब गमन किय ॥४८॥

दूहा

जादिन सिषर बरात गय, तो दिन गय प्रथिराज ।
 ताही दिन पतिसाह कौ, भइ गज्जनै अवाज ॥४९॥

कवित्त

सुनि गज्जनै अवाज, चढ्यौ साहाबदीन वर ।
 खुरासांन सुलतान, कास काबिलिय मीर धर ॥
 जङ्ग जुरन जालिम जुम्हार, भुज सार भार भुअ ।
 धर धमंकि भजि सेस गगन रवि लुप्पि रेन हुअ ॥

उलटि प्रवाह मानौ सिंधु सर, रुकि राह अडौ रहिय ।

तिहि घरिया राज प्रथिराजसौं, चंद वचन इह विधि कहिय ॥५०॥

कवित्त

निकट नगर जब जांनि, जाय बर विंद उभय भय ।

समुद सिखर घन नद, इंद दुहुँ ओर घोर गय ॥

अगिवानिय अगिवान, कुँअर बनि बनि हय सज्जति ।

दिष्पन को त्रिय सबनि, चढ़ि गौरव छाजन रज्जति ॥

बिलखि अवास कुँवरी वदन, मनो राह छाया सुरत ।

भंपति गवष्टि पल पल पलकि, दिखत पंथ दिल्ली सुपति ॥५१॥

पद्वरी

दिष्पंत पंथ दिल्ली दिसांन, सुख भयों सूक जब मिल्यो आन ॥५२॥

संदेश सुनत आनंद नैन, उमगीय बाल मनमध्य सैन ॥५३॥

तन चिटक चीर डारयो उतारि, मज्जन मयंक नव सत सिंगार ॥५४॥

भूषन मँगाय नखशिख अनूप, सजि सेन मनो मनमध्य भूप ॥५५॥

सोत्रन्न थार मोतिन भराय, भलहल करंत दीपक जराय ॥५६॥

संगह सखिय लिय सहस बाल, रुकमिनिय जेम लज्जत मराल ॥५७॥

पूजिय गवरि संकर मनाय, दच्छिनै अङ्ग करि लगिय पाय ॥५८॥

फिर देसि देखि प्रथिराजराज, हँस मुद्ध मुद्ध कर पट्ट लाज ॥५९॥

कर पकरि पीठ हय पर चढ़ाय, लै चलयौ नृपति दिल्ली सुराय ॥६०॥

भई खबरि नगर बाहिर सुनाय, पद्मावतीय हरि लीय जाय ॥६१॥

बाजी सुबंब हय गय पलान, दौरे सुसज्जि दिस्सह दिसान ॥६२॥

तुम लेहु लेहु मुख जंपि जोध, हन्नाह सूर सब पहरि क्रोध ॥६३॥

अगोँ जु राज प्रथिराज भूप, पच्छै सुभयो सब सेन रूप ॥६४॥
 पहुँचे सुजाय तत्ते तुरंग, भुअ भिरन भूप जुरि जोध जंग ॥६५॥
 उलटी जु राज प्रथिराज बाग, थकि सूर गगन धर धसत नाग ॥६६॥
 सामंत सूर सब काल रूप, गहि लोह छोह वाहै सु भूप ॥६७॥
 कम्मान बाँन छुट्टहि अपार, लागंत लेहि इम सारि धार ॥६८॥
 धमसान घान सब वीर खेत, घन श्रोन बहत अरु रुकत रेत ॥६९॥
 मारे बरात के जोध जोह, परि रुंड मुंड अरि खेत सोह ॥७०॥

दूहा

परे रहत रिन खेत अरि, करि दिलिय मुख रुक्ख ।
 जीति चलयौ प्रथिराज रिन, सकल सूर भय सुक्ख ॥७१॥
 पदमावति इस लै चलयौ, हरिख राज प्रथिराज ।
 एतें परि पतिसाह की, भई जु आनि अवाज ॥७२॥

कवित्त

भई जु आनि अवाज, आय साहाव दीन सुर ।
 आज गहाँ प्रथिराज, बोल बुल्लंत गजत धुर ॥
 क्रोध जोध जोधा अनंत, करिय पंती अनि गज्जिय ।
 बाँन नालि हथनालि, तुपक तीरह सब सज्जिय ॥
 पवै पहार मनो सार के, भिरि भुजांन गजनेस बल ।
 आये हंकारि हंकारि करि, खुरासान सुलतान दल ॥७३॥

भुजंगप्रयात

खुरासान मुलतान खंधार मीरं, बलक सो बलं तेग अचूक तीरं ॥७४॥
 रुहंगी फिरंगी हलंबी समानी, ठटी ठट्ट बल्लोच ढालं निसानी ॥७५॥

मँजारी चखी मुखस जम्बक लारी, हजारी हजारी इकै जोध मारी ७६
 तिनं पप्परं पीठ हथ जीन सालं, फिरंगी कती पास मुकलात लालं ७७
 तहाँ बाघ बाघं मरुही रिछोरी, घनं सार समूह अरु चौर भोरी ७८
 एराकी अरब्वी पटी तेज ताजी, तुरकी महावांन कम्मान बाजी ७९
 ऐसे असिव असवार अगगोल गोलं, भिरे भूप जेते सुतत्ते अमोलं ८०
 तिनं मद्धि मुलतांन साहाव आपं, इसे रूपसां फौज वरनाय जापं ८१
 तिनं घेरियं राजप्रथिराजराजं, चिहौं ओर वनघोर नीसांन बाजं ८२

कवित्त

वज्जिय घोर निसाँन, राँन चौहान चहौं दिस ।
 सकल सूर सामंत, समरि बल जंत्र मंत्र तस ॥
 उट्टि राज प्रथिराज, बाग लग मनो वीर नट ।
 कढ़त तेग मनोवेग, लगत मनो बीज भट्ट घट ॥
 थकिरहे सूर कौतिक गिगन, रगन मगन भइ श्रोन घर ।
 हृदि हरपि वीर जग्गे हुलस, हुरेउ रंगिनवरत्त वर ॥८३॥

दूहा

हुरेउ रंग नव रंत कर, भयौ जुद्ध अति चित्त ।
 निस वासुर समुझि न परत, न को हार नह जित्त ॥८४॥

कवित्त

न को हार नह जित्त, रहेइ न रहहि सूरवर ।
 धर उपपर भर परत, करत अति जुद्ध महाभर ॥
 कहौं कमध कहौं मथ, कहौं कर चरन अन्तरुहिर ।
 कहौं कंव वहि तेग, कहौं सिर जुट्टि फुट्टि उर ॥

कहौं दंत मंत हय खुर पुपरि, कुम्भ भ्रसुं डहरुण्ड सब ।

हिंदवान रान भय भांन मुख, गहिय तेग चहुवांन जब ॥८५॥

भुजंगप्रयात

गही तेग चहुवांन हिंदवान रानं, गजं जूथ परि कोप केहरि समानं ८६
करे रुण्ड मुण्ड करी कुम्भ फारे, बरं सूर सामंत हुकि गर्ज भारे ८७
करी चीह चिकार करि कलप भग्गे, मदं तंजियं लाज ऊमंगमग्गे ८८
दौरि गज अंध चहुवांन केरो, घेरीयं गिरहं चिहौ चक्र फेरो ८९
गिरहं उड़ी भांन अंधार रैनं, गई सूधि सुज्झै नहीं मज्झि नैनं ९०
सिरं नाय कम्मांन प्रथिराजराजं, पकरियै साहि जिम कुलिंग बाजं ९१
लै चलयौ सिताबी करी फारि फौजं, परें मीर सै पंचतहँ खेत चौजं ९२
रजंपुत्त पचास मुज्झे अमोरं, बजै जीत के नह नीसान घोरं ९३

दूहा

जीति भई प्रथिराज की, पकरि साह लै संग ।
दिल्ली दिसि मारगि लगौ, उतरि घाट गिर गंग ॥९४॥
वर गोरी पद्मावती, गहि गोरी सुरतांन ।
निकट नगर दिल्ली गये, प्रथिराज चहुवांन ॥९५॥

कवित्त

बोलि विप्र सोधे लगन, सुभ घरी परिद्विय ।
हर बांसह मंडप बनाय, करि भांवरि गंठिय ॥
ब्रह्म वेद उचरहि होम चौरी जु प्रत्ति वर ।
पद्मावती दुलहिन अनूप, दुल्लह प्रथिराजराज नर ॥
डंड्यौ साह साहावदी, अट्ट सहस हय वर सुवर ।
दै दांन मांन षट्भेष को चढ़े राज दुग्गा हुजर ॥९६॥

कवित्त

चढ़िय राज प्रथिराज, छाड़ि साहाबदीन सुर ।
 निपत सूर सामंत, वजत निसान गजत धुर ॥
 चंद्रबदनि मृगनयनि, कलस ले सिर सनमुख जुख ।
 कनक थार अति बनाय, मोतिन बंधाय सुख ॥
 मंडल मयंक वर नार सब, आनन्द कंठह गाइयव ।
 ढोरंत चँवर किकर करहिं, मुकट सीस तिक जु दियवा ॥६७॥

दूहा

चढ़े राज दुगाह नृपति, सुमत राज प्रथिराज ।
 अति आनन्द आनन्द सैं, हिंदवान सिरताज ॥६८॥

कबीरदास

जीवन-परिचय

जन्म सं० १४५६ काशी में

मृत्यु सं० १५७५ मगहर में

कबीरदास ज्ञानमार्गी शाखा के सर्वप्रथम एवं प्रतिनिधि-महाकवि हैं। इनके जन्म के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। कुछ विद्वान् इन्हें विधवा ब्राह्मणी की सन्तान मानते हैं तो दूसरे नीरू और नीमा नामक जुलाहा-दम्पति की औरस सन्तान कहते हैं। कुछ भी हो यह तो सर्व-सम्मत है कि इनका पालन-पोषण मुस्लिम परिवार ही में हुआ। अतः इन्हें मुसलमान भक्त-कवि कहने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इनके गुरु श्री स्वामीरामानन्द थे। बचपन से ही यह हिन्दू धर्म से अत्यन्त प्रभावित थे। कभी-कभी तिलक भी लगा लिया करते और राम नाम तो इनका सर्वस्व ही था। किन्तु दूसरी ओर ये हिन्दू और मुसलमानों के भेद-भाव, वैर-विरोध को दूर करने के लिए भी श्रयत्न-शील थे। इन्होंने देखा कि व्रत, पूजा, रोज़ा, नमाज़ आदि बाह्य विधि-विधानों के कारण हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं। एक पूर्व में मुँह करके सन्ध्या करता है तो दूसरा पश्चिम की ओर मुँह किये हुए नमाज़ पढ़ता है, इसीलिए कबीर ने दोनों धर्मों के बाहरी विधि-विधानों का कड़े शब्दों में खण्डन किया। एक स्थान पर कहते हैं कि—

पत्थर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहाड़।

ताते यह चक्की भली, पीस खाय संसार ॥

तो दूसरे स्थान पर लिखते हैं कि—

कंकर पत्थर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।

ता चढ़ि मुल्लाँ बाँग दे, बहिरा हुआ खुदाय ॥

इस प्रकार की खण्डनात्मक उक्तियों से दोनों ही धर्मों वाले कबीर से चिढ़ गये; फलतः वे अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल न हो सके । फिर भी निम्न वर्ग के लोगों पर उनके उपदेशों का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा । आचरण की शुद्धता, अहिंसा, सत्य आदि सद्गुणों के द्वारा मनुष्यों को आत्मोन्नति का मार्ग दिखाकर समाज के उपेक्षित अंग अर्थात् निम्न वर्ग का उन्होंने विशेष उपकार किया । यद्यपि कबीर पढ़े-लिखे न थे फिर भी वे अलौकिक प्रतिभासम्पन्न महापुरुष थे । इनकी उक्तियों में स्थान-स्थान पर रहस्यवाद का अभिव्यञ्जन हुआ है ।

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी अथवा खिचड़ी है जिसमें ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, पंजाबी आदि अनेक प्रांतीय भाषाएँ मिली-जुली हैं ।

कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' कहलाता है । इसके तीन भाग हैं—१ रमैणी, २ शब्द, ३ साखी ।

कहते हैं कि कबीर की मृत्यु के पश्चात् उनके हिन्दू और मुसलमान शिष्यों में दाह-संस्कार करने और दफनाने के सम्बन्ध में झगड़ा हो गया था किन्तु चादर उठाकर देखने पर शव के स्थान पर कुछ फूल मिले । आधे फूलों को हिन्दुओं ने लेकर दाह-संस्कार किया और आधे को लेकर मुसलमानों ने दफना दिया । सम्भवतः कबीर ने स्वयं ही पहले से यह व्यवस्था कर दी थी ।

साखी

अछै पुरुष इक पेड़ है निरंजन वाकी डारन
तिरदेवा साखा भये पात भया संसार ॥
साहेब मेरा एक है दूजा कहा न जाय ।
दूजा साहेब जब कहूँ साहेब खरा रिसाय ॥
जाके मुँह माथा नहीं नाहीं रूप कुरूप ।
पुहुप वास तें पातरा ऐसा तत्व अनूप ॥
देही माहिं विदेह है साहेब सुरति सरूप ।
अनंत लोक में रमि रहा जाके रंग न रूप ॥
चार भुजा के भजन में भूलि परे सब संत ।
कबिरा सुमिरन तासु का जाके भजा अनंत ॥
जनम मरण से रहित है मेरा साहेब सोय ।
बलिहारी बहि पीव की जिन सिरजा सब कोय ॥
एक कहौं तो है नहीं दोय कहौं तो गारि ।
है जैसा तैसा रहै कहै कबीर विचारि ॥
साहेब सों सब होत हैं बंदे तें कछु नाहिं ।
राई ते पर्वत करे पर्वत राई माहिं ॥
साहेब सा समरथ नहीं गरुआ गहरि गंभीर ।
औगुन छोड़े गुन गहे छिनक उतारे तीर ॥
जो कुछ किया सो तुम किया मैं कछु कीया नाहिं ।
कहो कही जो मैं किया तुम ही थे मुक्त माहिं ॥

जाको राखै साइयाँ मारि न सकके कोय ।
 बाल न बाँका करि सकै जो जग वैरी होय ॥
 जंत्र मंत्र सब भूठ है मत भरमो जग कोय ।
 सार सव्द जाने विना कागा हंस न होय ॥
 ज्ञान-दीप परकास करि भीतर भवन जराय ।
 तहाँ सुमिर सतनाम को सहज समाधि लगाय ॥
 लाली मेरे लाल की जित देखौं तित लाल ।
 लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल ॥
 साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय ।
 सार सार को गहि रहै थोथा देइ उड़ाय ॥
 औगुन को तो ना गहै गुन ही को ले वीन ।
 घट-घट महके मधुप ज्यों परमात्म ले चीन ॥
 भक्ति भेस बहु अन्तरा जैसे धरनि अकास ।
 भक्त लीन हरि चरन में भेष जगत की आस ॥
 देखा देखी भक्त का कवहूँ न चढ़सी रंग ।
 विपति पड़े यों छाँडिसी ज्यों केंचुली भुजंग ॥
 भक्ति गेंद चौगान की भावें कोई लै जाय ।
 कह कबीर कलु भेद नहिं कहा रंक कह राय ॥
 जब मैं था तब गुरु नहीं अब गुरु हैं हम नाहिं ।
 प्रेम गली अति साँकरी ता मैं दो न समाहिं ॥
 उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास ।
 तिनका तिनके से मिला तिन का तिन के पास ॥

सौ जोजन साजन बसै मानो हृदय मँभार ।
 कपट सनेही आँगने जानु समुन्दर पार ॥
 यह तत वह तत एक है एक प्राण दुई गात ।
 अपने जिये से जानिये मेरे जिय की बात ॥
 हम तुम्हरो सुमिरन करें तुम मोहिं चितवौ नाहिं ।
 सुमिरन मन की प्रीति है सो मन तुमहीं माहिं ॥
 सबै रसायन मैं किया प्रेम समान न कोय ।
 रति इक तन में संचरै सब तन कंचन होय ॥
 मिलना जग में कठिन है मिलि बिछड़ो जनि कोय ।
 बिछुड़ा सजन तेहि मिलै लिन माथे मनि होय ॥
 जब लगि मरने से डरै तब लगि प्रेमी नाहिं ।
 बड़ो दूर है प्रेम घर समझ लेहु मन माहिं ॥
 हरि से तू जनि हेत कर कर हरिजन से हेत ।
 माल मुलुक हरि देत हैं हरिजन हरिहीं देत ॥
 कबिरा माला काठ की बहुत जतन का फेर ।
 माला स्वाँस उसास की जामें गाँठ न मेर ॥
 कबिरा क्या मैं चितहूँ मम चिते क्या होय ।
 मेरी चिता हरि करें चिन्ता मेरी न कोय ॥
 साधू गाँठि न बाँधई उदर समाता लेय ।
 आगे पीछे हरि खड़े जब माँगे तब देय ॥
 साई इतना दीजिए जामें कुटुम्ब समाय ।
 मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय ॥

गाया जिन पाया नहीं अनगाये तें दूरि ।
 जिन गाया विश्वास गहि ताके सदा हजूरि ॥
 बिरह बान जेहि लागिया औषध लगत न ताहि ।
 सुसुकि सुसुकि मरि मरि जिवै उठै कराहि कराहि ॥
 मेरा तुझ में कुछ नहीं जो-कुछ है सो तोर ।
 तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर ॥
 जो हंसा मोती चुगै काँकर क्यों पतियाय ।
 काँकर माथा ना नवै मोती मिलै तो खाय ॥
 एक अचंभो देखिया हीरा हाट विकाय ।
 परखनहारा बाहिरी कौड़ी बदले जाय ॥
 दाम रतन धन पाइकै गाँठि बाँधि न खोल ।
 नहि पटन नहि पारखी नहि गाहक नहि मोल ॥
 सर्पहि दूध पिलाइए सोई विष ह्वै जाय ।
 ऐसा कोई ना मिला आपे ही विष खाय ॥
 एक समाना सकल में सकल समाना ताहि ।
 कबीर समाना बूझ में तहाँ दूसरा नाहि ॥
 कथनी मीठी खाँड-सी करनी विष की लोय ।
 कथनी तजि करनी करै विष से अमृत होय ॥
 कथनी थोथी जगत में करनी उत्तम सार ।
 कह कबीर करनी सबल उतरै भौ-जल पार ॥
 पद जोरै साखी कहै साधन परि गई रौस ।
 कढ़ा जल पीवै नहीं काढ़ि पियन की हौस ॥

कहता तो बहुता मिला गहता मिला न कोय ।
 सो कहता बहि जान दे जो नहिं गहता होय ॥
 जो देखे सो कहै नहिं कहै सो देखे नाहिं ।
 सुनै सो समझ वै नहीं रसना दृगश्रुति काहिं ॥
 मैं मरजीवा समुँद्र का डुबकी मारी एक ।
 मूठी लाया ज्ञान की जामें वस्तु अनेक ॥
 डुबकी मारी समुद्र में निकसा जाय अकास ।
 गगन मंडल घर किया हीरा पाया दास ॥
 मरते-मरते जग मुआ औरस मुआ न कोय ।
 दास कबीरा यों मुआ बहुरि न मरना होय ॥
 जा मरने से जग डरै मेरे मन आनन्द ।
 कव मरिहौं कव पाइहौं पूरन परमानन्द ॥
 घर जारे घर ऊबरै घर राखे वर जाय ।
 एक अचंभा देखिया मुआ काल को खाय ॥
 रोड़ा भया तो क्या भया पंथी को दुख देय ।
 साधू ऐसा चाहिए ज्यों पैडे की खेह ॥
 खेय भई तो क्या भया उड़ि-उड़ि लागै अङ्ग ।
 साधू ऐसा चाहिए जैसे नीर निपङ्ग ॥
 नीर भया तो क्या भया ताता सीरा जोय ।
 साधू ऐसा चाहिए जो हरि जैसा होय ॥
 हरी भया तो क्या भया करता हरता होय ।
 साधू ऐसा चाहिए हरि भज निरमल होय ॥

निरमल भया तो क्या भया निरमल मांगे ठौर ।
 मल निरमल से रहित है ते साधू कोई और ॥
 गगन दमामा बाजिया पड़त निसाने घाव ।
 खेत पुकारै शूरमा अब लड़ने का दाव ॥
 अब तो जूझै ही बने मुड़ चाले घर दूर ।
 सिर साहेब को सौंपते सोच न कीजे सूर ॥
 सिर राखे सिर जात है सिर काटै सिर सोय ।
 जैसे वाती दीप की कटे उजारा होय ॥
 पतिवरता मैली भली काली कुचित कुरूप ।
 पतिवरता के रूप पर वारो कोटि सरूप ॥
 कविरा सीप समुद्र की रटै पियास पियास ।
 और बूँद को ना गहै स्वाति बूँद की आस ॥
 पपिहा का मन देखकर धीरज रहै न रंच ।
 मरते दम जल में पड़ा तऊ न बोरी चंच ॥
 नाम न रटा तो क्या हुआ जो अन्तर है हेत ।
 पतिवरता पति को भजै मुख से नाम न लेत ॥
 सतगुरु सम को है सगा साधू सम को दांत ।
 हरि समान को हितू है हरिजन सम को जात ॥
 गुरु सिकलीगर कीजिए मनहिं मस्कला देय ।
 मन की मैल छुड़ाई कै चित दरपन करि लेय ॥
 गुरु धोवी सिष कापड़ा सावुन सिरजन हार ।
 सुरति सिला पर धोइये निकसे जोति अपार ॥

पंडित पढ़ि गुन पचि मुए गुरु विन मिलै न ज्ञान ।
 ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है सत्त शब्द परमान ॥
 बात बनाई जग ठगा मन परबोधा नाहिं ।
 कह कबीर मन लै गया लख चौरासी माहिं ॥
 नीर पियावत का फिरै घर घर सायर बारि ।
 तृषावन्त जो होइगा पीवैगा भख मारि ॥
 सिंहों के लेहँडे नहिं हंसों की नहिं पाँत ।
 लाखों की नहिं बोरियाँ साध न चलै जमात ॥
 सब बन तो चन्दन नहीं सूरु का दल नाहिं ।
 सब समुद्र मोती नहीं यों साधू जग माहिं ॥
 साधु साधु सब एक हैं ज्यों पोस्ते का खेत ।
 कोई विवेकी लाल है नहीं सेत का सेत ॥
 निराकार की आरसी साधो ही की देह ।
 लखा जो चाहै अलख को इनहीं में लखि लेह ॥
 पक्षापक्षी कारणे सब जग रहा भुलान ।
 निरपक्ष है हरि भजै तेई सन्त सुजान ॥
 संगत भई तो क्या भया हिरदा भया कठोर ।
 नौ नेजा पानी चढ़े तऊ न भीजै कोर ॥
 हरिया जाने रूखड़ा जो पानी का नेह ।
 सूखा काठ न जानही केतहु बूढ़ा मेह ॥
 पसुआ सों पाला परचो रहु रहु हिया न खीज ।
 ऊसर बीज न उगसी घालै दूना बीज ॥

कबिरा चंदन के निकट नीम भी चन्दन होय ।
 बूड़े बाँस बड़ाइया यों जनि बूड़ो कोय ॥
 माला तिलक लगाइ के भक्ति न आई हाथ ।
 दाढ़ी मूँछ मुँडाइ के चले दुनी के साथ ॥
 दाढ़ी मूँछ मुँडाइ के हूआ घोटम घोट ।
 मन को क्यों नहिँ मूँडिये जा में भरिया खोट ॥
 मूँड मुँडाये हरि मिलैं सब कोइ लेहि मुँडाय ।
 बार बार के मूँडने भेड़ न बैकुण्ठ जाय ॥
 बांवी कूटें बावरे सांप न मारा जाय ।
 मूरख ! बांवी ना डसै सर्प सवन को खाय ॥
 लोहे केरी नावरी पाहन गरुआ भार ।
 सिर पै विष की मोटरी उतरन चाहे पार ॥
 हम तो जोगी मनहिँ के तन के हैं ते और ।
 मन का जोग लगावते दसा भई कलु और ॥
 कुसल कुसल ही पूछते जग में रहा न कोय ।
 जरा मुई ना भय मुआ कुसल कहाँ से होय ॥
 पानी केरा बुदबुदा अस मानुष की जात ।
 देखत ही छिप जायगा ज्यों तारा परभात ॥
 कबिरा नौवत आपनी दिन दस लेहु बजाय ।
 यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखो आय ॥
 कबिरा गर्व न कीजिये अस जोवन की आस ।
 टेसू फूला दिवस दस खंखर भया पलास ॥

दीन गँवायो संग दुनी दुनी न चाली साथ ।
 पाँव कुल्हाड़ी मारिया मूरख अपने हाथ ॥
 मैं भँवरा तोहिं बरजिया वन वन वास न लेय ।
 अटकैगा कहूँ बेल से तड़पि तड़पि जिय देय ॥
 भय बिनु भाव न ऊपजै भय बिनु होय न प्रीति ।
 जब हिरदे से भय गया मिटी सकल रस रीति ॥
 चलती चक्की देखि के दिया कबीरा रोय ।
 दुइ पट भीतर आइ के साबित गया न कोय ॥
 दव की दाही लाकड़ी ठाढ़ी करे पुकार ।
 अब जो जाऊँ लोहार घर ड़ाहै दूजी बार ॥
 पात भरंता यों कहै सुनु तरुवर वनराय ।
 अब के विछुरे ना मिलैं दूरि परैंगे जाय ॥
 दस द्वारे का पीजरा तामें पंछी पौन ।
 रहिवे को अचरज बड़ो जाय तो अचरज कौन ॥
 आवत गारी एक है उलटत होय अनेक ।
 कह कबीर नहिं उलटिये वही एक ही एक ॥
 उदर समाता अन्न लै तनहिं समाता चीर ।
 अधिकहिं संग्रह ना करै ताका नाम फकीर ॥
 जहाँ काम तहँ नाम नहिं जहाँ नाम नहिं काम ।
 दोनों कवहूँ ना मिलैं रवि रजनी इक ठाम ॥
 काम काम सब कोई कहै काम न चीन्हे कोय ।
 जेती मन की कल्पना काम कहावैं सोय ॥

आव गई आदर गया नैनन गया सनेह ।
 ये तीनों तब ही गये जबहिं कहा कछु देय ॥
 प्रभुता को सब कोउ भजै प्रभु को भजै न कोय ।
 कह कवीर प्रभु को भजै प्रभुता चेरी होय ॥
 चित कपटी सब सों मिलै माहीं कुटिल कठोर ।
 इक दुरजन इक आरसी आगे पीछे और ॥
 कविरा जोगी जगत गुरु तजै जगत की आस ।
 जो जग की आसा करै जगत गुरु वह दास ॥
 सोता साध जगाइये करै नाम का जाप ।
 यह तीनों सोते भले साकत सिंह और साँप ॥
 निंदक एकहु मति मिलो पापी मलौ हजार ।
 इक निंदक के सीस पर कोटि पाप को भार ॥
 माया छाया एक सी विरला जानै कोय ।
 भगताँ के पीछे फिरै सनमुख मागै सोय ॥
 चलो चलो सब कोई कहे पहुँचे विरला कोय ।
 एक कनक औ कामिनी दुरगम घाटी दोय ॥
 नारी की भाँई परत अन्धा होत भुजङ्ग ।
 कविरा तिनकी कौन गति नित नारी को संग ॥
 जो जल वाढ़ै नाव में घर में वाढ़ै दाम ।
 दोऊ हाथ उलीचिये यही सज्जन को काम ॥
 हाड़ बड़ा हरि भजन कर द्रव्य बड़ा कुछ देय ।
 अकल बड़ी उपकार कर जीवन का फल येह ॥

देह धरे का गुण यही देहु देहु कछु देहु ।
 बहुरि न देही पाइये अबकी देहु सो देहु ॥
 मरि जाऊँ माँगूँ नहीं अपने तन के काज ।
 परमारथ के कारने मोहिं न आवै लाज ॥
 सब तें लघुताई भली लघुता तें सब होय ।
 जस दुतिया को चन्द्रमा सीस नवै सब कोय ॥
 लघुता ते प्रभुता मिलै प्रभुता ते प्रभु दूरि ।
 चींटी लै शकर चली हाथी के सिर धूरि ॥
 दया धर्म हिरदे नहीं ज्ञान कथै बेहद ।
 ते नर नरकहिं जाहिंगे सुनि सुनि साखी शब्द ॥
 प्रेम प्रीति का चोलना पहिरि कबीरा नाच ।
 तन मन ता पर वार दूँ जो कोई बोलै साँच ॥
 ज्यों अन्धेरे की हाथिया सब काहू को ज्ञान ।
 अपनी अपनी कहत हैं काको धरिये ध्यान ॥
 फूटी आंखि विवेक की लखै न संत असंत ।
 जाके संग दस बीस हैं ताका नाम महंत ॥
 बिना बसीले चाकरी बिना बुद्धि की देह ।
 बिना ज्ञान के जोगना फिरै लगाये खेह ॥

शब्द

: १ :

संतो योग अध्यात्म सोई ।

एक ब्रह्म सकल घट व्यापै दुतिया और न कोई ॥
 प्रथम कमल जहँ ज्ञान चारि दल तह गणेश को बासा ।
 रिधि सिधि जाकी शक्ति उपासा जप ते होत प्रकासा ॥
 पट दल कमल ब्रह्म को बासा सावित्री सँग सेवा ।
 पट सहस्र जहँ जाप जपत हैं इन्द्र सहित सब देवा ॥
 अष्ट कमल जहँ हरि सँग लक्ष्मी तीजो सेवक पवना ।
 पट सहस्र जहँ जाप जपत हैं मिटिगो आवागवना ॥
 द्वादस कमल में शिव को बासा गिरजा शक्ति सारंगा ।
 पट सहस्र जहँ जाप जपत हैं ज्ञान सुरति पारंगा ॥
 षोडस कमल में जीव को बासा शक्ति अविद्या जानै ।
 एक सहस्र जहँ जाप जपत हैं ऐसा भेद बखानै ॥
 भँवर गुफा जहँ दुइ दल कमला परमहंस कर बासा ।
 एक सहस्र जाके जाप जपत हैं करम भरम को नासा ॥
 सहस्र कमल मिलमिल दरसो आपुइ बसत अपारा ।
 जोति सरूप सकल जग व्यापी अछत पुरुष है प्यारा ॥
 सुरति कमल पर सतगुरु बोले सहज जाप जप सोई ।
 छः सै इकइस सहसहि जपि ले बूझै अज्ञपा कोई ॥

यही ज्ञान को कोई बूझै भेद अगोचर भाई ।
जो बूझै सो मन को पेखै कहै कवीर समुझाई ॥

: २ :

माया महा ठगिनि हम जानी ।

तिरगुन फांस लिये कर डोलै बोलै मधुरी बानी ।
केशव के कमला है बैठी शिव के भवन भवानी ।
पंडा के मूरति है बैठी तीरथ में भइ पानी ॥
योगी के योगिनी है बैठी राजा के घर रानी ।
काहू के हीरा है बैठी काहू के कौड़ी कानी ॥
भक्तन के भक्तिनी है बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी ।
कहै कवीर सुनो हो संतो यह सब अकथ कहानी ॥

: ३ :

भाई कोई सतगुरु संत कहावै, नैनन अलख लखावै ।
डोलत डिगै न बोलत बिसरै जब उपदेश दढ़ावै ॥
प्राण पूज्य किरिया ते न्यारा सहज समाधि सिखावै ।
द्वार न रूँधै पवन न रोकै नहिं अनहद अरुभावै ॥
यह मन जाय जहां लग जवहीं परमात्म दरसावै ।
करम करै निहकरम रहै जो ऐसो जुगुत लखावै ॥
सदा विलास त्रास नहिं मन में भोग में जोग जगावै ।
धरती त्यागि अकासहुँ त्यागै अधर मँडइया छावै ॥

सुन्न सिखर के सार सिला पर आसन अचल जमावै ।
भीतर रहा सो बाहर देखै दूजा दृष्टि न आवै ॥
कहत कबीर बसा है हंसा आवागवन मिटावै ॥

: ४ :

दरियाव की लहर दरियाव है जो दरियाव औ लहर भिन्न कोयम ।
उठे तो नीर है बैठता नीर है कहो किस तरह दूसरा होयम ॥
उसी नाम को फेर के लहर धारो लहर के कहे क्या नीर खोयम ।
जक्त ही फेर सब जक्त है ब्रह्म में ज्ञान करि देख कबीर गोयम ॥

: ५ :

दुइ जगदीश कहाँ ते आये कहहु कौन भरमाया ।
अल्ला राम करीम केशव हरि हजरत नाम धराया ॥
गहना एक कनक ते गहना तामें भाव न दूजा ।
कहन सुनन को दुइ कर थापे एक नेवाज एक पूजा ॥
वही महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिए ।
कोइ हिन्दू कोइ तुरक कहावे एक जमीं पर रहिए ॥
वेद किताब पढ़ै वे कुतबा वे मौलाना पाण्डे ।
विगत विगत कै नाम धरायो एक माटि के भाण्डे ॥
कह कबीर ते दोनों भूले रामहिं किनहु न पाया ।
वे खसिया वे गाय कटावैं बाँदै जन्म गँवाया ॥

: ६ :

ऐसी दुनिया भई दीवानी, भक्ति भाव नहिं बूझै जी ।
 कोई आवै तो बेटा मागे, यही गुसाईं दीजै जी ॥
 कोई आवै दुख का मारा, हम पर किरपा कीजै जी ।
 कोई आवै तो दौलत माँगै, भेंट रुपैया लीजै जी ॥
 कोई करावै ब्याह सगाई, सुनत गुसाईं रीझै जी ।
 सांचे का कोई गाहक नाही, भूठे जगत पतीजै जी ।
 कहै कबीर सुनो भइ साधो, अन्धों को क्या कीजै जी ॥

जायसी

जीवन-परिचय

जन्म सं० १५५० जायस में ।

मृत्यु सं० १६०० अमेठी में ।

ये प्रेममार्गी शाखा के प्रतिनिधि एवं सर्वश्रेष्ठ कवि थे । इनका अमेठी के राजघराने में पर्याप्त सम्मान था । ये काने और कुरूप थे । एक बार शेरशाह इन्हें देखकर हँस पड़ा । इस पर इन्होंने कहा—“मोहि का हँससि कि कोहरहि ।”

यद्यपि ये जन्म से मुसलमान थे तथापि हृदय से इन्हें हिन्दू कहा जा सकता है । मुसलमान होते हुए भी इन्होंने हिन्दूवीर शिरोमणि की प्रशंसा में अपना प्रसिद्ध महाकाव्य ‘पद्मावत’ लिखा । पद्मावत प्रेम प्रधान-महाकाव्य है; इसके पूर्वार्ध की कथा अभी तक कवि की अपनी कल्पना कही जाती थी किन्तु प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् और रिसर्च स्कालर श्री पं० भगवद्दत्त बी० ए० ने ‘श्रीस्वाध्याय’ के साहित्यांग में एक लेख लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि पद्मावत का पूर्वार्ध जायसी की अपनी कल्पना नहीं है, प्रत्युत यह कथा कल्किपुराण से ली गई है और उत्तरार्ध ऐतिहासिक है । यद्यपि जायसी प्रेममार्गी शाखा के कवि थे, तथापि इसमें वीररस का भी स्थान-स्थान पर सुन्दर परिपाक हुआ है । उनका यह महाकाव्य प्रेम-प्रधान ही है । इस काव्य की भाषा अवधी है और यह दोहा, चौपाई, छन्द तथा फारसी की मसनवी पद्धति में लिखा गया है । रहस्यवाद की जितनी सुन्दर अवतारणा इस काव्य में हुई है, उतनी अन्य किसी भी महाकाव्य में नहीं हो पाई । हिन्दी महाकाव्यों में ‘रामचरितमानस’ के बाद ‘पद्मावत’ का ही स्थान है । हिन्दू-मुस्लिम हृदय के अजनबीपन को मिटाकर एक-दूसरे को निकट लाने के लिए जायसी ने स्तुत्य और सफल प्रयत्न किया, इसमें कुछ सन्देह नहीं । ‘अखरावट’ इनकी दूसरी पुस्तक है ।

पद्मावत

लीन्ह पान बादल औ गोरा । केहि लेइ देउँ उपम तुम जोरा ॥
तुम सावंत, न सरवरि कोऊ । तुम हनुवंत अङ्गद सम दोऊ ॥
तुम अरजुन औ भीम भुवारा । तुम बल रन दल मंडनहारा ॥
राम लखन तुम दैत सँवारा । तुमहीं घर बलभद्र भुवारा ॥
तुमहिं युधिष्ठिर औ दुरजोधन । तुमहिं नल नील दोउ संबोधन ॥
तुम परदुम्न औ अनिरुध दोउ । तुम अभिमन्यु बोल सब कोऊ ॥
तुम्ह सरि पूज न बिक्रम साके । तुम हमीर हरिचन्द सम आँके ॥

जस अति संकट पंडवन्ह भएउ भीवँ बैदि छोर ।

तस परबस पिउ काढ़हु राखि लेहु भ्रम मोर ॥

गोरा बादल बीरा लीन्हा । जस हनुवंत अङ्गद वर कीन्हा ॥
कंवल-चरन भुइं धरिदुख पावहु । चढ़ि सिंघासन मंदिर सिधावहु ॥
सुनतहि सूर कंवल हिय जागा । केसरि-वरन फूल हिय लागा ॥
जनु निसि महंदेन दीन्ह देखार्इ । भा उदोत, मसि गई विलार्इ ॥
बादल केरि जसोवै माया । आइ गहेसि बादल कर पाया ॥
बादल राय, मोर तुइ बारा । का जानसि कस होइ जुभारा ॥
बादसाह पुहुमी-पति राजा । सनमुख होइ न हमीरहि छाजा ॥

जहाँ दलपती दलि मरहिं तहाँ तोर का काज ?

आजु गवन तोर आवै बैठि मानु सुख राज ॥

मातु न जानसि बालक आदी । हौं बादला सिंह रनवादी ॥

सुनि गज-जूह अधिक जिउ तपा । सिंघ क जाति रहै किमि छपा ?
 तौ लगि गाज, न गाज सिंघेला । सौंह साह सौं जुरौं अकेला ॥
 को मोहि सौंह होइ मैमंता । फारौ संड, उखारौं दन्ता ॥
 जुरौं स्वामि संकरे जस ढारा । पेलौं जस दुरजोधन मारा ॥
 अङ्गद कोपि पाँव जस राखा । टेकौं कटक छतीसौं लाखा ॥
 हनुवँत सरिस जँघ बर जोरौं । दहौं समुद्र, स्वामि-बँदि छोरौं ॥

सो तुम, मातु जसोवै, मोहिं न जानहु बार ।

जहँ राजा बलि बाँधा छोरौं पैठि पतार ॥

बादल गवन जूझ कर साजा । तैसेहि गवन आइ घर बाजा ॥
 का बरनौं गवने कर चारू । चन्द्रबदनि रचि कीन्ह सिंगारू ॥
 मानि गवन सो घूँघुट काढ़ी । बिनवै आइ बार भइ ठाढ़ी ॥
 मुख फिराइ मन अपने रीसा । चलत न तिरिया कर मुख दीसा ॥
 तब धनि बिहँसि कहा गहि फेंटा । नारि जो बिनवै कन्त न मेटा ॥
 आजु गवन हों आई, नाहां । तुम न, कंत, गवनहु रन माहां ॥
 धनि न नैन भरि देखा पीऊ । पिउ न मिला धनिसौं भरि जीऊ ॥

पायन्ह धरा लिलाट धनि 'बिनय सुनहु हो राय' ।

अलक परी फँदवार होइ कैसेहु तजै न पाय ॥

छाँडि फेंट धनि, बादल कहा । पुरुष-गवन धनि फेंट न गहा ॥
 जो तुइ गवन आइ, गजगामी । गवन मोर जहँवाँ मोर स्वामी ॥
 जौ लगि राजा छूटि न आवा । भावै वीर, सिंगार न भावा ॥
 तिरिया भूमि खड्ग कै चेरी । जीत जो खड्ग होइ तेहिं केरी ॥
 जेहि घर खड्ग मोँछ तेहिं गाढ़ी । जहाँ न खड्ग मोँछ नहिं दाढ़ी ॥

तव मुँह मोंछ, जीउ पर खेलौं । स्वामि काज इन्द्रासन पेलौं ॥
पुरुष बोलि कै टरै न पाछू । दसन गयन्द गीउ नहिं काछू ॥

तुइ अबला, धनि, कुबुधि बुधि जानै काह जुभार ।

जेहि पुरुषहि हिय बीर रस भावै तेहि न सिंगार ॥

एकौ विनति न मानै नाहाँ । आगि परी चितउर धनि माहाँ ॥
उठा जो धूम नैन करवाने । लागे परै आँसु भराने ॥
भीजे हार, चीर, हिय चोली । रही अछूत कन्त नहिं खोली ॥
जौ तुम कन्त, जूझ जिउ काँधा । तुम किय साहस, मैं सत बाँधा ॥
रन संप्राम जूझ जिति आवहु । लाज होइ जौ पीठि देखावहु ॥
मतैं बैठि बादल औ गोरा । सो मत कीजै परै नहिं भोरा ॥
जस तुरकन्ह राजा छर साजा । तस हम साज छोड़ावहिं राजा ॥

पुरुष तहाँ पै करैं छर जहँ वर किए न आट ।

जहाँ फूल तहँ फूल है जहाँ काँट तहँ काँट ॥

सोरह सै चंडोल सँवारे । कुँवर सजोइल कै बैठारे ॥
पद्मावति कर सजा विद्वानू । बैठ लोहार न जानै भानू ॥
रचि विवान सो साजि सँवारा । चहूँ दिसि चँवरकरहिं सब ढारा ॥
साजि सबै चंडोल चलाए । सुरँग ओहार, मोति बहु लाए ॥
भए सँग गोरा बादल वली । कहत चले पद्मावति चली ॥
हीरा रतन पदारथ भूलहिं । देखि विवान देवता भूलहिं ॥
सोरह सै सँग चलीं सहेली । कँवल न रहा, और को वेली ?

राजहिं चलीं छोड़ावै तहँ रानी होइ ओल ।

तीस सहस तुरि खिचीं सँग सोरह सै चंडोल ॥

राजा बँदि जेहि के सौंपना । गा गोरा तेहि पहुँ अगमना ॥
 टका लाख दस दीन्ह अँकोरा । बिनती कीन्ह पायँ गहि गोरा ॥
 बिनवौ बादसाह सौँ जाई । अब रानी पद्मावति आई ॥
 बिनती करै आइ हौँ दिल्ली । चितउर कै मोहि स्यो है किल्ली ॥
 बिनती करै जहाँ है पूँजी । सब भँडार कै माँहि स्यो कूँजी ॥
 एक घरी जौ अग्या पावौँ । राजहिँ सौँपि मँदिर महँ आवौँ ॥
 तव रखवार गए सुलतानी । देखि अँकोर भए जस पानी ॥

लीन्ह अँकोर हाथ जेहि जीउ दीन्ह तेहि हाथ ।

जहाँ चलावै तहाँ चलै फेरे फिरै न माथ ॥

लोभ पाप कै नदी अँकोरा । सत्त न रहै हाथ जौ बोरा ॥
 जहँ अँकोर तहँ नीक न राजू । ठाकुर केर बिनासै काजू ॥
 भा जिउ धिउ रखवारन्ह केरा । दरब लोभ चंडोल न हेरा ॥
 जाइ साह आगे सिंर नावा । 'ए जगसूर' चाँद चलि आवा ॥
 जावत है सब नखत तराई । सोरस सै चंडोल सो आई ॥
 चितउर जेति राज कै पूँजी । लेइ सो आइ पद्मावति कूँजी ॥
 बिनती करै जोरि कर खरी । लेइ सौँपौँ राजा एक घरी ॥

इहाँ उहाँ कर स्वामी दुअौ जगत मोहि आस ।

पहले दरस देखावहु तौ पठवहु कैलास ॥

आग्या भई, जाइ एक घरी । छूँछि जो घरी फेरि विधि भरी ॥
 चलि बिवान राजा पहुँ आवा । संग चंडोल जगत सब छावा ॥
 पद्मावति के भेस लौहारू । निकसि कोटि बँदि कीन्ह जोहारू ॥
 उठा कोपि जस छूटा राजा । चढ़ा तुरंग, सिंघ अस गाजा ॥

गोरा बादल खांडे काढ़े । निकसि कुँवर चढ़ि चढ़ि भए ठाढ़े ॥
 तीख तुरंग गगन सिर लागा । केहुँ जुगुति करि टेकी बागा ॥
 जो जिउ ऊपर खड़ग सँभारा । मरनहार सो सहसन्ह मारा ॥

भई पुकार साह सौँ, ससि औ नखत सो नाहिं ।

छर कै गहन गरासा, गहन गरासे जाहिं ॥

लेई राजा चितउर कहँ चले । छूटेउ सिंघ, मिरिंग खल भले ॥
 चढ़ा साहि, चढ़ि लाग गोहारी । कटक असूझ परी जग कारी ॥
 फिरि गोरा बादल सौँ कहा । गहन छूटि पुनि चाहै गहा ॥
 चहुँ दिसि आवै लोपत भानू । अब इहै गोइ, इहै मैदानू ॥
 तुइ अब राजहिं लेइ चलु गोरा । हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा ॥
 वह चौगान तुरुक कस खेला । होइ खेलार रन जुरौं अकेला ॥
 तौ पावौं बादल अस नाऊँ । जौ मैदान गोइ लेइ जाऊँ ॥

आजु खड़ग चौगान गहि करौं सीस रिपु गोइ ।

खेलौं सौंह साह सौँ हाल जगत महँ होइ ॥

तब अगमन होइ गोरा मिला । तुइ राजहि लेइ चल, बादला !
 पिता मरै जौ सँकरे साथी । मीचु न देइ पूत के माथा ॥
 मैं अब आउ भरी औ भूँजी । का पछिताव आउ जौ पूँजी ॥
 बहुतन्ह मारि मरौं जौ जूझी । तुम जिनि रोएहु तौ मन बूझी ॥
 कुँवर सहस सँग गोरा लीन्हे । और वीर बादल सँग कीन्हे ॥
 गोरहि समदि मेघ असगाजा । चला लिए आगे करि राजा ॥
 गोरा उलटि खेत भी ठाढ़ा । पूरुष देखि चाव मन बाढ़ा ॥

आव कटक सुलतानी गगन छपा मसि माँझ ।

परति आव जग कारी होति आव दिन साँझ ॥

फिर आगे गोरा तब हांका । 'खेलौं, करौं आजु रन साका ॥

हौं कहिए धौलागिरि गोरा । टरौं न टारे, अंग न मोरा ॥

साहिल जैस गगन उपराहीं । मेघ-घटा मोहिं देखि बिलाहीं ॥

सहसौ सीस सेस सम लेखौं । सहसौं नैन इन्द्र सम देखौं ॥

चारिउ भुजा चतुरभुज आजू । कंस न रहा, और को साजू ॥

हौं होइ भीम अरजुन रन गाजा । पाछे घालि डुंगवै राजा ॥

होइ हनूवँत जमकातर ढाहौं । आजु स्वामी सांकरे निबाहौं ॥

होइ नल नील आजु हौं देहुँ समुद्र महँ मेंड़ ।

कटक साह कर टेकौं होइ सुमरु रन बेंड़ ॥

ओनई घटा चहुँ दिसि आई । छूटहि बान मेघ भरि लाई ॥

डोलै नाहि देव जस आदी । पहुँचे आइ तुरुक सब बादी ॥

हाथन्ह गहे खड़ग हरद्वानी । चमकहि सेल बीजु कै पानी ॥

सोझ बान जस आवहि गाजा । बासुकि डरै सीस जनु बाजा ॥

नेजा उठे डरै मन इंदू । आइ न बाज जानि कै हिन्दू ॥

गोरै साथ लीन्ह सब साथी । जस मैमन्त सूँड़ विनु हाथी ॥

सब मिलि पहिलीं उठौनी कीन्ही । आवत आइ हांकि रन दीन्ही ॥

रुंड मुंड अब टूटहि स्यों बखतर औ कूँड़ ।

तुरय होहि विन कांधे हस्ति होहि विनु सूँड़ ॥

भइ बगमेल, सेल घनघोरा । औ गज-पेल, अकेल सो गोरा ॥

सहस कँवर सहसौ सत बाधा । मार पहार जूझ कर कांधा ॥

लगे मरै गोरा के आगे । बाग न मोर घाव मुख लागे ॥
जैसे पतङ्ग आगि धँसि लेई । एक मुवै, दूसर जिउ देई ॥
टूटहिं सीस, अधर धर मारै । लोटहिं कंधहिं कंध निरारै ॥
कोई परहिं रुहरि होइ राते । कोई घायल घूमहिं माते ॥
कोई खुरखेह गए भरि भोगी । भसम चढ़ाइ परे होइ जोगी ॥

घरी एक भारत भा भा असवारन्ह मेल ।

जूझि कुँवर सब निबरे गोरा रहा अकेल ॥

गौरै देख साथि सब जूझा । आपन काल नियर भा, बूझा ॥
कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला । लाखन्ह सौं नहिं मरै अकेला ॥
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा । जैसे पवन बिदारै घटा ॥
जेहि सिर देइ कोपि करवारू । स्यां घोड़े टूटै असवारू ॥
लोटहिं सीस कबन्ध किनारे । माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे ॥
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा । चाँचरि खेलि आगि जनु लावा ॥
हस्ती घोड़ धाइ जो धूका । ताहि कीन्ह सो रुहरि भभूका ॥

भइ अग्यो सुलतानी ' बेगि करहु एहि हाथ ।

रतन जात है आगे लिए पदारथ साथ' ॥

सबै कटक मिलि गोरहि छेका । गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका ॥
जेहि दिसि उठ सोइ जनु खावा । पलटि सिंघ तेहिं ठाँव न आवा ॥
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा । मुए पाछु कोई घिसियावा ॥
करै सिंघ मुख सौंहहिं दीठी । जौ लगि जियै देई नहिं पीठी ॥
सरजा वीर सिंघ चढ़ि गाजा । आइ सौंह गोरा सौं वाजा ॥
पहुँचा आइ सिंघ असवारू । जहाँ सिंघ गोरा बरिचारू ॥

मारेसि साँग पेट महँ धँसी । कादेसि हुमुकि आंति भुईँ खँसी ॥

भांट कहा धनि गोरा, तू भा रावन राव ।

आंति समेटि बांधि कै तुरत देत है पाव ॥

कहेसि अंत अब भा भुईँ परना । अंत त खसे खेह सिर भरना ॥

कहि कै गरजि सिंघ अस धावा । सरजा सारदूल पहुँ आवा ॥

सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ । परा खड़ग जनु परा निहाऊ ॥

दूसर खड़ग कंध पर दीन्हा । सरजै ओहि ओड़न पर लीन्हा ॥

तीसर खड़ग कूँड़ पर लावा । काँध गुरुज हुत, धाव न आवा ॥

तब सरजा कोपा वरिबंडा । जनहु सदूर केर भुजदंडा ॥

कोपि गरजि मारेसि तस बाजा । जानहु परी दूटि सिर गाजा ॥

गोरा परा खेत महँ सुर पहुँचावा पान ।

बादल लेइगा राजा लेइ चितउर नियरान ॥

पदमावति मन रही जो भूरी । सुनत सरोवर-हिय गा पूरी ॥

अद्रा महि-हुलास जिमि होई । सुख सोहाग आदर भा सोई ॥

राजा जहां सूर परगासा । पदमावती मुख-कँवल बिगासा ॥

कँवल पायँ सूरज के परा । सूरज कँवल आनि सिर धरा ॥

पूजा कौनि देऊँ तुम्ह राजा ? सबै तुम्हार, आव मोहि लाजा ॥

तन मन जोवन आरति करऊँ । जीव काढ़ि नेछावरि धरऊँ ॥

पंथ पूरि कै दिस्टि बिछावौँ । तुम पग धरहु, सीस मैं लावौँ ॥

जौ सूरज सिर ऊपर तौ रे कँवल सिर छात ।

नाहिं त भरे सरोवर सूखे पुरइन-पात ॥

परसि पायँ राजा के रानी । पुनि आरति बादल कहँ आनी ॥

पूजे बादल के भुजदंडा । तुरय के पांव दाब कर-खंडा ॥
 यह गजगवन गरब जो मोरा । तुम्ह राखा, बादल औ गोरा ॥
 सेंदुर-तिलक जो आंकुस अहा । तुम्ह राखा, माथे तौ रहा ॥
 काछ काछि तुम जिउ पर खेला । तुम्हें जिव आनि मंजूषा मेला ॥
 राखा छात चँवर औ धारा । राखा छुद्रघंट - भक्तकारा ॥
 तुम हनुवंत होइ धुजा पईठे । तब चितउर पिय आइ बईठे ॥

पुनि गजमत्त चढ़ावा नेत बिछाई खाट ।

बाजत गाजत राजा आइ बैठ सुख पाट ॥

सुनि देवपाल राय कर चालू । राजहिं कठिन परा हिय सालू ॥
 दादुर कतहुँ कँवल कहँ पेखा । गादुर मुख न सूरकर देखा ॥
 अपने रँग जस नाच मयूरू । तेहि सरि साध करै तमचूरू ॥
 जौ लगि आइ तुरुक गढ़ बाजा । तौ लगि धरि आनौं तब राजा ॥
 नींद न लीन्हि, रैन सव जागा । होत बिहान जाइ गढ़ लागा ॥
 कुंभलनेर अगम गढ़ बांका । विषम पंथ चढ़ि जाइ न भांका ॥
 राजहि तहां गएउ लेइ कालू । होइ सामुहँ रोपा देवपालू ॥

दुवौ अनी सनमुख भई लोहा भएउ असूझ ।

सत्रु जुझि तब नेवरै एक दुवौ महँ जूझ ॥

जौ देवपाल राव रन गाजा । मोहिं तोहिं जूझ एकौभा, राजा !
 मेलेसि सांग आइ विष-मरी । मेटि न जाइ काल कै घरी ॥
 आइ नाभि पर सांग बईठी । नाभि बेधि निकसी सो पीठी ॥
 चला मारि तब राजै मारा । टूट कंध, धड़ भएउ निनारा ॥

सीस काटि कै बैरी बाँधा । पावा दावं बैर जस साधा ॥
जियत फिरा आएउ बल-भरा । माँझ बाट होइ लोहै धरा ॥
कारी घाव जाइ नहिं डोला । रही जीभ जम गही, को बोला ?

सुधि-बुधि तौ सब विसरी भार परा मँझबाट ।

हस्ति घोर को का कर घर आनी गइ खाट ॥

जौ लहि साँस पेट महँ अही । तौ लहि दसा जीउ कै रही ॥
काल आइ देखराई साँटी । उठि जिउ चला छोड़ि कै माटी ॥
का कर लोग, कुटुंब, घर-बारू । का कर अरथ दरब संसारू ?
ओही घरी सब भएउ परावा । आपन सोइ जो परसा, खावा ॥
अहे जे हितू साथ के नेगी । सबै लाग काढ़ै तेहि बेगी ॥
हाथ भारि जस चलै जुवारी । तजा राज, होइ चला भिखारी ॥
जब हुत जीउ, रतन सब कहा । भा बिनु जीउ न कौड़ी लहा ॥

गढ़ सौँपा बादल कह गए टिकाठ बसि देव ।

छोड़ी राम अजोध्या, जो भावै सो लेव ॥

पदमावति पुनि पहिरि पटोरी । चली साथ पिउ के होइ जोरी ॥
सूरुज छिपा, रैनि होइ गई । पूनो-ससि, सो अमावस भई ॥
छोरे केस, मोति-लर छूटीं । जानहुँ रैनि नखत सब दूटीं ॥
संदूर परा जो सीस उधारा । आगि लागि चह जग अँधियारा ॥
'यही दिवस हौं चाहति, नाहा । चलौं साथ, पिउ, देइ गलवाहाँ ॥
सारस पंखि न जियै निनारे । हौं तुम्ह बिनु का जिअौं, पियारे ॥
नेवछावरि कै तन छहरावों । छार होउँ संग बहूरि न आवों ॥

दीपक प्रीति पतंग जेउँ जनम निबाह करेउँ ।

नेवछावरि चहुँ पास होइ कंठ लागि जिउ देउँ ॥

नागमती पदमावति रानी । दुवा महा सत सती बखानी ॥

दुवो सबति चढ़ि खाट बईठी । औ मिवलोक परा तिन्ह दीठी ॥

बैठी कोइ राज औ पाटा । अंत सबै बैठे पुनि खाटा ॥

चन्दन अगर काठ सर साजा । औ गति देइ चले लेइ राजा ॥

बाजन बाजहिं होइ अगूता । दुवो कंत लेइ चाहहिं सूता ॥

एक जो बाजा भएउ बियाहू । अव दुसरे होइ ओर निबाहू ॥

जियत जौ जरै कंत के आसा । मुँ रहसि बैठे एक पासा ॥

आजु सूर दिन अथवा आजु रैन ससि बूड़ ।

आजु नाचि जिउ दीजिय आजु आगि हम्ह जूड़ ॥

सर रचि दान-पुनि बहु कीन्हा । सात बार फिरि भांवरि लीन्हा ॥

‘यह जग काह जो अछहि न आथी । हम तुम, नाथ, दुहूँ जग साथी ॥

लेइ सर ऊपर खाट बिछाई । पौढ़ीं दुवौ कंत गर लाई ॥

वै सहगवन भई जब जाई । बादसाह गढ़ छेंका आई ॥

तौ लागि सो अवसर होइ बीता । भए अलोप राम औ सीता ॥

आइ साह जौ सुना अखारा । होइगा राति दिवस उजियारा ॥

छार उठाइ लीन्ह एक मूठी । दीन्हि उड़ाइ पिरथिमी भूठी ॥

जौहर भई सब इस्तिरी पुरुष भए संग्राम ।

बादसाह गढ़ चूरा चितउर भा इसलाम ॥

मुहमद कवि यह जोरि सुनावा । सुना सो पीर प्रेम कर पावा ॥

जोरी लाइ रक्त कै लेई । गाढ़ी प्रीति नयनन्ह जल भेई ॥
 औ मैं जानि गीत अस कीन्हा । मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा ॥
 कहाँ सो रतनसेन अब राजा ? कहाँ सुआ अस बुधि उपराजा ॥
 कहाँ अलाउदीन सुलतानू ? कहँ राघव जेइ कीन्ह बखानू ?
 कहँ सुरूप पदमावति रानी ? कोइ न रहा, जग रही कहानी ॥
 धनि सोइ जस कीरति जासू ? फूल मरै, तै मरै न बासू ?

केइ न जगत जस वेंचा केइ न लीन्ह जस मोल ।

जो यह पढ़ै कहानी हम्ह सँवरै दुइ बोल ॥

सूरदास

जीवन-परिचय

जन्म सं० १५४० रुणकता में, गोलोकवास सं० १६२० पारसोली में ।

महात्मा सूरदास कृष्ण-भक्ति शाखा के प्रतिनिधि एवं सर्वश्रेष्ठ महा-कवि थे । इनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में मतभेद है । रुणकता (रेणुका क्षेत्र) अथवा सिहीं नामक ग्राम में इनका जन्म माना गया है । ये मथुरा और आगरा के मध्य में गऊघाट नामक स्थान पर रहा करते और भगवद्भक्ति के गीत गाया करते थे । इनके अन्धे होने के सम्बन्ध में भी बहुत से मत हैं । चाहे ये किसी रोग से अन्धे हुए हों अथवा अपने हाथों अपनी आँखें निकाल ली हों, कुछ भी हो, यह तो निश्चित है कि यह जन्मान्ध नहीं थे ।

एक बार गऊघाट पर महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी महाराज ने इनके पद सुनकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की और इन्हें श्रीनाथ जी के मन्दिर में लाकर कीर्तन का मुखिया बना दिया । ये तभी से भगवान् कृष्ण की भक्ति में तन्मय होकर नित्य नए पद बनाकर अपने प्रभु को रिक्ताने लगे । इन्हें 'अष्टछाप' के आठ कवियों में प्रधान स्थान दिया गया । १ 'सूरसागर' २ 'साहित्य लहरी' तथा ३ 'सूरसारावली' इनके बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं । सूरसागर में श्रीमद्भागवत का हिन्दी गीतों में स्वतन्त्र भावानुवाद किया गया है । इस अनुवाद के लिए वल्लभाचार्य जी ने आदेश दिया था । पहले नौ स्कन्धों का संक्षिप्त चलता-सा वर्णन मात्र कर दिया या है । किन्तु दशम स्कन्ध का बड़ा विस्तृत वर्णन है । उसमें भी भगवान् कृष्ण की बाल-लीला, रूपमाधुरी, प्रणय, विरह-वर्णन, विनय, शृङ्गार, गोपी-उद्धव-संवाद अथवा भ्रमरगीत बड़े विस्तृत

रूप से कहे गए हैं; क्योंकि यह मुक्तक गीतकाव्य है अतः इसमें एक ही भाव के अनेकों पद बन गए हैं।

सूरदास वस्तुतः वत्सल रस की मूर्ति ही हैं। इन्होंने बालकृष्ण का बड़ा ही स्वाभाविक सरस सुन्दर चित्र चित्रित किया है इसलिए 'सूर' का दूसरा नाम 'वत्सलरस' कहा गया है। वत्सलरस ही क्यों विरह, रूपमाधुरी, गोपी-उद्धव-संवाद आदि अन्य विषयों में भी सूरदास अपने उपनाम आप ही हैं। भाषा की कोमलता का तो कहना ही क्या? एक तो योंही वज्रभाषा संस्कृत के पश्चात् सर्वाधिक कोमल है और फिर वह सूर-सरीखे महापुरुष की वाणी से निकल कर सुगन्धि और मृदुलता से युक्त सुवर्ण बन गई है।

जैसी तन्मयता, सरसता और निश्चल सात्विक भक्ति सूर और तुलसी में पाई जाती है वैसी अन्य किसी कवि में नहीं। वास्तव में तुलसी और सूर हिन्दी-साहित्याकाश के सूर्य और चन्द्र हैं। इन महात्मा की प्रशंसा में कहा गया निम्न पद—

“किंघौँ सूर को सर लग्यो, किंघौँ सूर की पीर।

किंघौँ सूर को पद लग्यो, वेध्यो सकल शरीर ॥”

अक्षरशः सत्य है।

विनय

अपनी भक्ति दे भगवान ।

कोटि लालच जो दिखावहु नाहिनै रुचै आन ॥
जा दिना तें जनमु पायो यह मेरी रीति ।
विषय-विष हठि खात, नाहीं डरत करत अनीति ॥
थके किंकर जूथ जम के टारे टरत न नेक ।
नरक-कूपनि जाइ जमपुर परचो बार अनेक ॥
महा माचल मारिबे की सकुच नाहिन मोहिं ।
परचो हौं पन किये द्वारे लाज पन की तोहिं ॥
नाहिनै काँचौ कृपानिधि करौ कहा रिसाइ ।
'सूर' तबहुँ न द्वार छाँड़ै डारिहौ कढ़राइ ॥

अब कै माधव मोहि उधारि ।

मगन हौं भव अंबुनिधि में कृपासिंधु मुरारि ॥
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग ।
लिये जात अगाध जल में गहे ग्राह अनंग ॥
मीन-इन्द्रिय अतिहि काटत मोट अध सिर भार ।
पग न इत उत धरन पावत उरभि मोह सेवार ॥
काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति भकभोर ।
नाहिं चितवन देत तिय-सुत नाम-नौका ओर ॥

थक्यो बीच बेहाल विहवल सुनहु करुनामूल ।

स्याम ! भुज गहि काढ़ि डारहु 'सूर' ब्रज के कूल ॥

अब हौं नाच्यौ बहुत गोपाल ।

काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ॥

महा मोह के नूपुर बाजत, निन्दा शब्द रसाल ।

भरम भरो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल ॥

तसना नाद करत घट भीतर, नाना विधि दै ताल ।

माया को कटि फैंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दियो भाल ॥

कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहि काल ।

'सूरदास' की सबै अविद्या, दूर करहु नँदलाल ॥

अविगत गति कछु कहत न आवै ।

ज्यों गूँगेहि मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै ॥

परम सुस्वादु सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै ।

मन बानी को अगम अगोचर जो जाने सो पावै ॥

रूपरेखगुन जाति जुगुति विनु निरालम्ब मन चकृत धावै ।

सब विधि अगम विचारहि तातें 'सूर' सगुन लीला पद गावै ॥

कहावत ऐसे त्यागी दानि ।

चारि पदारथ दए सुदामहिं अरु गुरु को सुत आनि ॥

रावन के दस मस्तक छेदे सर हति सारँग-पानि ।

विभीषण को लंका दीनी पूरबली पहिचानि ॥

मित्र सुदामा कियो अजाचक प्रीति पुरातन जानि ।

'सूरदास' सों कहा निठुराई नैननि हूँ की हानि ॥

छाँड़ि मन हरि-विमुखन को संग ।

जाके सङ्ग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग ॥
 कहा भयो पय पान कराये विष नहिं तजत भुजंग ।
 काम क्रोध मद लोभ मोह में निस दिन रहत उमंग ॥
 कागहिं कहा कपूर खवाए, स्वान न्दवाये गंग ।
 खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषण अंग ॥
 पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतो करत निपंग ।
 'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़े न दूजो रंग ॥

माधव जू ! यह मेरी इक गाइ ।

अब आजु तें आप आगे दर्ई लै आइये चराइ ॥
 है अति हरहाई हटकत हू बहुत अमारग जाति ।
 फिरत बेद बन ऊख उखारत सब दिन अरु सब राति ॥
 हित कै मिलै लेहु गोकुलपति अपने गोधन माँह ।
 सुख सोऊँ सुनि बचन तुम्हारे देहु कृपा करि बाँह ॥
 निधरक रहों 'सूर' के स्वामी जन्म न पाऊँ फेरि ।
 मैं ममता रुचि सों जदुराई पहिले लेउ निवेरि ॥

बाललीला

चरन गहे अँगुठा मुख मेलत ।

नंद घरनि गावति हलरावति पलना पर किलकत हरि खेलत ॥
 जो चरनारविंद श्रीभूषन उरते नेकु न टारति ।
 देखों धौं का रसु चरनन मैं मुख मेलत करि आरति ॥

जा चरनारविन्द के रस को सुर नर करत विवाद ।
 यह रस तो है मोको दुरलभ ताते लेत सवाद ॥
 उछलत सिंधु धराधर काँप्यो, कमठपीठि अकुलाइ ।
 सेस सहसफन डोलन लागे हरि पीवत जब पाइ ॥
 बह्यो वृच्छ बर, सुर अकुलाने गगन भयो उत्पात ।
 महा प्रलय के मेघ उठे करि जहाँ तहाँ आवात ॥
 करुना करी छाँड़ि पगु दीनो जानि सुरन मन संस ।
 'सूरदास' प्रभु असुर निकंदन दुष्टन के उर गंस ॥

कान्हा चलत पग द्वै द्वै धरनी ।

जो मन में अभिलाष करत ही सो देखत नँदधरनी ॥
 रुनुक भुनुक नूपुर बाजत पग यह अति है मन हरनी ।
 बैठ जात पुनि उठत तुरत ही सो छवि जाय न बरनी ॥
 ब्रज युवती सब देखि थकित भई सुन्दरता की सरनी ।
 चिरजीवो जसुदा को नंदन 'सूरदास' को तरनी ॥

भैया कबहिं बढैगी चोटी ।

कित बार मोहिं दूध पीवत भई यह अजहूँ है छोटी ॥
 तू जसु कहत बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँची मोटी ।
 काढ़त गुहत न्हावत ओछत नागिनि सी भुइ लोटी ॥
 काचो दूध पिवावत पचि पचि देत न माखन रोटी ।
 सूर स्याम चिरजिव दो भैया हरि हलधर की जोटी ॥
 ठाढ़ी अजिर जसोदा अपने हरिहि लिये चंदा दिखरावत ।
 रोवत कत बलि जाऊँ तुम्हारी देखौ धौं भरि नैन जुड़ावत ॥
 चितै रहै तब आपुन ससि तन अपने कर लै लै जु बतावत ।

मोसों लगत किधौ यह खाटो देखत अति सुन्दर मन भावत ॥
 मनहि मन हरि बुद्धि करत हैं माता को कहि ताहि मँगावत ।
 लागी भूख चन्द मैं खैहौ देहु रिस करि बिरुभावत ॥
 जसुमति कहत कहा मैं कीनो रोवत मोहन अति दुख पावत ।
 'सूर' स्याम को जसुदा बोधति गगन चिरैयाँ उड़त लखावत ॥
 बार बार जसुमति सुत बोधति आउ चंद तोहि लाल बुलावै ।
 मधु मेवा पकवान मिठाई आपु न खैहैं तोहि खवावै ॥
 जल-भाजन कर लै उठावति या में तनु धरि आवै ।
 हाथहि हर तोहि लीने खेलै नहि धरनी बैठावै ॥
 जल-पुट आनि धरनि पर राख्यो गहि आन्यो चंदा दिखरावै ।
 'सूरदास' प्रभु हँसि मुसकाने बार बार दोऊ कर नावै ॥

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो ।

मोसों कहत मोल को लीनो तोहि जसुमति कब जायो ॥
 कहा कहौ एहि रिस के मारे खेलन हौं नहि जातु ।
 पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु ॥
 गोरे नंद जसोदा गोरी तुम, कत स्याम सरीर ।
 चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर ॥
 तू मोहीं को मारन सीखी दाउहि कबहुँ न खीझै ।
 मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति पुनि पुनि रीझै ॥
 सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही को धूत ।
 'सूर' स्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत ॥

खेलन दूरि जात कित कान्हा ।

आजु सुन्यो बन हाऊ आयो तुम नहिं जानत नान्हा ॥
 इक लरिका अवहीं भजि आयो बोल बुझावहुँ ताहि ।
 कान तोरि वह लेत सवन के लरिका जानत जाहि ॥
 चलिये बेगि सबेर सबै भजि अपने अपने धाम ।
 'सूरदास' यह बात सुनत ही बोलि लिये बलराम ॥

सखा सहित गए माखन चोरी ।

देख्यो स्याम गवाच्छ पंथ है गोपी एक मथति दधि भोरी ॥
 हेरि मथानी धरी माट पै माखन हो उतरात ।
 आपुन गई कमोरी मांगन हरि हू पाई घात ॥
 पैठे सखन सहित घर सूने माखन दधि सब खाई ।
 छूँछी छाँड़ि मटुकिया दधि की हँसे सब बाहिर आई ॥
 आई गई कर लिये मटुकिया घर ते निकले ग्वाल ।
 माखन कर दधि मुख लपटाने देखि रही नंदलाल ॥
 भुज गहि लियो कान्ह को, बालक भागे ब्रज की खोरि ।
 'सूरदास' प्रभु ठगि रही ग्वालनि मनु हरि लियो अँजोरि ॥

आई छोक बुलाए स्याम ।

यह सुनि सखा सबै जुरि आए सुबल सुदामा अरु श्रीदाम ॥
 कमलपत्र दोना पलास के सब आगे धरु परसति जात ।
 ग्वाल मण्डली मध्य स्यामघन सब मिलि भोजन रुचिर खात ॥
 ऐसी भूख माँझ इह भोजन पठै दियो करि जसुमति मात ।
 'सूर' स्याम अपनो नहिं जेवत ग्वालन कर तें लै लै खात ॥

ग्वालन कर तें कौर छुड़ावत ।

जूठो लेत सबन के मुख को अपने मुख लै नावत ॥
 घटरस के पकवान धरे सब तामें नहिं रुचि पावत ।
 हा हा करे माँगि लेत हैं कहत मोहिं अति भावत ॥
 यह महिमा एई पै जानै जाते आप बंधावत ।
 'सूर' स्याम सपने नहिं दरसत मुनिजन ध्यान लगावत ॥

आज मैं गाय चरावन जैहौं ।

चुन्दावन के भाँति भाँति फल अपने कर तैं खैहौं ॥
 ऐसी अबहिं कहौं जनि बारे देखौं अपनी भाँति ।
 तनिक तनिक पग चलिहौ कैसे आवत हूँ है राति ॥
 प्रात जात गैयां लै चारन घर आवत है साँझ ।
 तुमरो कमल-बदन कुम्हिलैहै रेंगत घामहिं माँझ ॥
 तेरी सौं मोहि घाम न लागत भूख नहीं कछु नेक ।
 'सूरदास' प्रभु कह्यौ न मानत परे आपनी टेक ॥

मैया मैं न चरैहौं गाई ।

सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों मेरे पाई पिराइ ॥
 जो न पत्याहि पूछ बलदाउहिं अपनी सौंह दिवाइ ।
 मैं पठवति अपने लरिका कूँ आवै मन बहराइ ॥
 'सूर' स्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ ॥

खेलन अब मेरी जात बलैया ।

जबहिं मोहिं देखन लरिकन संग तबहिं खिभत बल भैया ॥
 मोसों कहत तात वसुदेव को देवकी तेरी मैया ।

मोल लियो कल्लु दे वसुदेव को करि करि जतन बटैया ॥
 अब बाबा कहि कहत नन्द को जसुमति को कहै मैया ।
 ऐसेहि कहि सब मोहिं खिजावत तब उठि चलो खिसैया ॥
 पाछे नन्द सुनत हैं ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया ।
 'सूर' नन्द बलरामहिं धिरयो सुनि मन हरख कन्हैया ॥

मैया मेरी मैं नहिं माखन खायो ।

भोर भइ गैयन के पाछे मधुवन मोहिं पठायो ।
 चार पहर बंशीबट भटक्यों साँझ परे घर आयो ॥
 मैं बालक बँहियन को छोटी छीको किहि विधि पायो ।
 ग्वाल बाल सब बैर परे हैं बरबस मुख लपटायो ॥
 तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो ।
 जिय तेरे कल्लु भेद उपज हैं जान परायो जायो ॥
 यह ले अपनी लकुटि कमरिया बहुतहिं नाच नचायो ।
 'सूरदास' तब बिहँसि जसोदा लै उर कण्ठ लगायो ॥



रूपमाधुरी

वरनों बाल-भेष मुरारि ।

थकित जित तित अमर-मुनि-गन नन्द लाल निहारि ॥
 केस सिर बिन पवन के चहुँ दिसा छिटके भारि ।
 सीस पर धरे जटा मानौ रूप किय त्रिपुरारि ॥

तिलक ललित ललाट केसरि बिन्दु सोभाकारि ।
 अरुन रेखा जनु त्रिलोचन रह्यो निज रिपु जारि ॥
 कण्ठ कठुला नीलमनी, अँभोज-माल सँवारि ।
 गरल ग्रीव, कपाल उर, यहि भाय भये मदनारि ॥
 कुटिल हरिनख हिये हरि के हरषि निरखति नारि ।
 ईस जनु रजनीस राख्यो भालहू ते उतारि ॥
 सदन-रज तन स्याम सोभित सुभग इहि अनुहारि ।
 मनहु अङ्ग विभूति राजत सम्भु सो मधु-हारि ॥
 त्रिदसपति-पति असन को पति अति जननि सों कर आरि ।
 'सूरदास' विरंचि जाको जपत निभ मुख-चारि ॥

देखो माई सुन्दरता को सागर ।

बुधि विवेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर ॥
 तनु अति स्याम अगाध अम्बुनिधि, कटि पट-पीत तरंग ।
 चितवत चलित अधिक रुचि उपजत भँवर परत अंग अङ्ग ॥
 मीन नैन मकराकृत कुण्डल, भुजबल सुभग भुजङ्ग ।
 मुकुत-माल मिलि मानो सुरसरि द्वै सरिता लिए संग ॥
 मोर मुकुट मनिगन आभूषन कटि किंकिन नखचन्द ।
 मनु अडौल वारिध मै विवित राका उडगन वृन्द ॥
 वदन चन्द्र-मण्डल की शोभा अवलोकत सुख देत ।
 जनु जलनिधि मथि प्रकट कियो ससि श्री अरु सुधा समेत ॥
 देखि सुरूप सकल गोपी जन रहीं निहारि निहारि ।
 तदपि 'सूर' तरि सकीं न सोभा रही प्रेम पचि हारि ॥

नटवर वेष काछे श्याम ।

पद कमल नख इन्दु सोभा ध्यान पूरन काम ॥
 जानु जंघ सुघट निकार्डि नाहिं रंभा तूल ।
 पीत पट काछनी मानहु जलज-केसरि भूल ॥
 कनक छुद्रावली पंगति नाभि कटि के भीर ।
 मनहुँ हंस रसाल पंगति रहे हैं हृद तीर ॥
 भलक रोमावली सोभा ग्रीव मोतिन हार ।
 मनहुँ गंगा बीच जमुना चली मिलि कै धार ॥
 बाहुदण्ड बिसाल तट दोउ अङ्ग चन्दन रेन ।
 तीर तरु बनमाल की छवि ब्रज जुवति मुखदेन ॥
 चिबुक पर अधरन दसन दुति विम्ब बीजु लजाइ ।
 नासिका सुक नैन खञ्जन, कहत कवि सरमाइ ॥
 स्रवन कुण्डल कोटि रवि छवि भृकुटि काम कोदंड ।
 'सूर' प्रभु हैं नीप के तर सिर धरे स्त्रीखण्ड ॥



मुरली-महिमा

माई री, मुरली अति गर्व काहू बढति नाहीं आजु ।
 हरि को मुखकमल देखि, पायो सुखराजु ॥
 देखत करत पीठ ढीठ, अधर छत्रछाहीं ।
 चमर-चिकुर राजत तहँ, सुन्दर सभा माहीं ॥
 जमुना के जलहिं नाहिं, जलधि जान देति ।
 सुर-पुर तें सुर-विमान, भुवि बुलाइ लेति ॥

थावर चर जङ्गम जहँ, करति जीति अजित ।
 वेद की विधि मेटि चलति, आपने ही रीति ॥
 बंसी-बस सकल 'सूर' सुर नर मुनि नाग ।
 श्रीपति हूँ श्री बिसारी एही अनुराग ॥

मुरली तऊ गोपालहिं भावति ।

सुन री सखी, जदपि नन्द-नन्दहिं, नाना भाँति नचावति ॥
 राखति एक पायँ ठाढ़ो करि, अति अधिकार जनावति ।
 कोमल अङ्ग आपुं आज्ञा गुरु, कटि टेढ़ी हूँ जावति ॥
 अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नारिं नवावति ।
 'सूर' प्रसन्न जानि एकौ छिन, अधर सुसीस डुलावति ॥

बाँसुरी बिधिहूँ तें प्रवीन ।

कहिये आहि को ऐसो, कियो जगत-आधीन ॥
 चारि बदन उपदेस बिधाता, थापि थिर चर नीति ।
 आठ बदन गर्जति गर्वीली, क्यों चलिये यह रीति ॥
 विपुल विभूति लई चतुरानन, एक कमल करि थान ।
 हरिकर-कमल जुगल पर बैठी बाढ्यो यह अभिमान ॥
 एक बेर श्रीपति के सिखये, उन लिय सब गुन-गान ।
 याके तौ नंदलाल लाड़िलो, लग्यो रहत नित कान ॥
 एक मराल-पीठि-आरोहन, बिधि भयो प्रबल प्रसंस ।
 यह तौ सकल विमान किये, गोपीजन-मानस-हंस ॥
 श्री बैकुण्ठनाथ उर-वासिनि, चाहत जा पद-रैन ।
 ताकौ मुख सुखमय सिंहासन, करि वैसी यह ऐन ॥

अधर-सुधा पी कुल-व्रत टार-यो, नहीं सिखा नहीं ताग ।
तदपि सूर या नंद-सुवन को, याहीं सौ अनुराग ॥

जसोदा बार-बार यों भाखै ।

है ब्रज में कोउ हितू हमारो, चलत गोपालहिं राखै ?
कहा काज मेरे छगन-मगन कौ, नृप मधुपुरी बुलायो ।
सुफलकसूत मेरे प्रान हनन कों, कालरूप है आयो ॥
बर ये गोधन हरौ कंस सब, मोहि बंदी लै मेलो ।
इतने ही सुख कमल-नयन मेरी, अंखियन आगे खेलो ॥
बासर बदन बिलोकत जीवों, निसि निज अङ्गम लाऊँ ।
तेहिं बिछुरत जो जीवों कर्मबस, तौ हँसी काहि बोलाऊँ ॥
कमल-नैन गुन टेरत-टेरत, अधर बदन कुम्हिलानी ।
'सूर' कहाँ लगि प्रगट जनाऊँ, दुखित नंद की रानी ॥
मेरे कुँवर कान्ह विन सब कल्लु, वैसे ही धर-यो रहै ॥
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत गहै ?
सूने भवन जसोदा सुत के, गुनि-गुनि सूल सहै ।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै ॥
जो ब्रज में आनन्द होत सो, मुनि मनसहु न गहै ।
'सूरदास' स्वामी विनु गोकुल, कौड़ी हूँ न लहै ॥

अमर-गीत

ऊधो ब्रज की दसा विचारो ।

ता पाछे यह सिद्धि आपनी, जोग-कथा विस्तारो ॥
जा कारन तुम पठये माधौ, सो सोचौ जिय माहीं ।

कितनो बीच विरह-परमार्थ, जानत हौ किधौं नाहीं ?
 तुम परबीन चतुर कहियत हौ, संतत निकट रहत हौ ।
 जल बूड़त अवलंब फेन कौ, फिर फिर कहा गहत हौ ?
 वह मुसुकानि मनोहर चितवनि, कैसे उर तें टारौं ।
 जोग जुगुति अरु मुकुति परमनिधि, वा मुरली पर वारौं ॥
 जिहि उर कमल-नयन जु बसत हैं, तिहि निर्गुण क्यों आवै ?
 'सूरदास' सो भजन बहाऊँ, जाहि दूसरौ भावै ॥

ऊधो, ना हम विरहिनि ना तुम दास ।

कहत सुनत घट प्राण रहत हैं, हरि तजि भजहु अकास ॥
 विरही मीन मरे जल बिछरे, छाँड़ि जीवन की आस ।
 दास-भाव नहिं तजत पपीहा, बरु साहि रहत पियास ॥
 पङ्कज परम पङ्क में विरहत, विधि कियो नीर निरास ।
 राजिव रवि कौ दोष न मानत, ससि सों सहज उदास ॥
 प्रगट प्रीति दशरथ प्रतिपाली, प्रियतम को बनवास ।
 'सूरस्याम' सों पति व्रत कीन्हों, छाँड़ि जगत उपहास ॥

सब जग तजे प्रेम के नाते ।

चातक स्वाति बूँद न छाँड़त, प्रगट पुकारत ताते ॥
 समुझत मीन नीर की बातें, तजत प्राण हठि हारत ।
 जानि कुरंग नेम नहिं त्यागत, जदपि व्याध सर मारत ॥
 निमिष चकोर नैन नहिं लावत, ससि जोवत जुग बीते ।
 ज्योति पतंग देखि बपु जारत, भये न प्रेमघट रीते ॥
 कहि अलि, क्यों विसरति वै बातें, संग जो करि ब्रजराजें ।
 कैसे 'सूरस्याम' हम छाँड़ैं, एक देह के काजें ॥

कोउ ब्रज बाँचत नाहिंन पाती ।

कत लिखि लिखि पठवत नँद-नंदन, कठिन विरह की काती ॥
नयन सजल कागद अति कोमल, कर अँगुरी अति ताती ।
परसत जरैं बिलोकत भीजति, दुहूँ भाँति दुख छाती ॥
क्यों समझै ये अंक 'सूर' सुनु, कठिन मदन सर घाती ।
देखे जियहिं स्यामसुन्दर के रहहिं चरन दिन राती ॥

उर मे माखन-चोर गड़े ।

अब कैसहुँ निकसत नहिं ऊधो, तिरछे है जु अड़े ॥
जदपि अहीर जसोदा-नन्दन, तदपि न जात छड़े ।
वहाँ बने जटुवंश महाकुल, हमहिं न लगत बड़े ॥
को बसुदेव, देवकी है को, ना जानै औ बूझै ।
'सूर' स्यामसुन्दर विन देखे, और न कोऊ सूझै

ऊधो मन नाहिं दस-वीस ।

एक हुतो सो गयो स्यामसँग, को आराधै ईस ?
भइ अति सिथिल सबै माधव बिनु, जथा देह बिनु सीस ।
स्वासा अटकि रही आसा लगि, जीवहिं कोटि-वरीस ॥
तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के, सकल जोग के ईस ।
'सूरदास' रसिकन की बतियाँ, पुरवौ मन जगदीस ॥

निरगुन कौन देस कौ बासी ।

मधुकर कहि समुझाइ सौँह दै बूझति साँच न हाँसी ॥
को है जनक जननि को कहियत, को नारी को दासी ।
कैसो बरन भेष है कैसो, केहि रस में अभिलापी ॥

पावैगौ पुनि कियौ आपनौ जो रे कहैगौ गाँसी ।
सुनत कौन ह्वै रह्यौ ठागौ सौ सूर सबै मति नासी ॥

उधौ, हम लायक सिख दीजै ।

यह उपदेस अगिनि ते तातो कहो कौन बिधि कीजै ॥
तुमहीं कहौ इहाँ इतननि मैं सीखनहारी को है ।
जोगी जती रहित माया तैं तिनहीं यह मति सोहै ॥
कहा सुनत विपरीत लोक मैं यह सब कोई कैहै ।
देखौ धौं अपनै मन सब कोइ तुमहीं दूषन दैहै ॥
चंदन अगरु गुगन्ध जे लेपत का बिभूति तन छाजै ।
'सूर' कहो सोभा क्यों पावै आँखि आँधरी आँजै ॥

कहाँ लै कीजै बहुत लड़ाई ।

अति अगाध स्तुति-वचन अगोचर मनसा तहाँ न जाई ॥
रूप न रेख बरन बपु जाकैं संग न सखा सहाई ।
ता निरगुन सौं प्रीति निरन्तर क्यों निबहै री माई ॥
जल बिनु तरँग चित्र बिनु भीतिहि बिनु चित ही चतुराई ।
अब ब्रज मैं नइ रीति कछू यह ऊधौ आनि चलाई ॥
मन चुभि रह्यौ माधुरी मूरति रोम रोम अरुभाई ।
स्याम सुभम गन सुन्दर लोचन निरखि सूर बलि जाई ॥

गोस्वामी तुलसीदास

जीवन-परिचय

जन्म सं० १५५४ राजापुर में । साकेतवास सं० १६८० काशी में ।

हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकवि गोस्वामी तुलसीदास के जन्म-स्थान, समय आदि के सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित हैं । कुछ विद्वान् १५८३ तो दूसरे १५८६ और अनेक समालोचक १५५४ में इनका जन्म स्वीकार करते हैं । मृत्यु तो इनकी निश्चित रूप में संवत् १६८० श्रावण कृष्ण तृतीया शनिवार को ही हुई थी । जैसा कि बाबा बेनी-माधव दास के 'गोसाईं-चरित' के निम्न दोहे से स्पष्ट है :—

संवत सोलह से असी, असी गङ्ग के तीर ।

श्रावण कृष्ण तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर ॥

तुलसीदास के अनन्य मित्र मदैनी गाँव के ठाकुर टोडर के वंशज अब भी श्रावण कृष्ण तृतीया ही को गोस्वामीजी के नाम पर सीधा दिया करते हैं ।

अतः गोस्वामीजी की पुण्य तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी प्रत्युत श्रावण कृष्ण तृतीया शनिवार ही है । अब शेष रहा प्रश्न जन्म संवत् का, सो बाबा बेनीमाधवदास-कृत 'गोसाईं-चरित', और बाबा रघुवर दास-कृत 'तुलसी-चरित' में वर्णित संवत् १५५४ श्रावण शुक्ला सप्तमी ही प्रमाणित तिथि और संवत् है जैसा कि निम्न दोहे से स्पष्ट है :—

पन्द्रह से चव्वन विषे तरणितनूजा-तीर ।

श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी धर्यो शरीर ॥

पर्याप्त ऊहापोह और आलोचना-प्रत्यालोचना करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि गोस्वामीजी का जन्म अवश्य ही

उक्त संवत् और तिथि को ही हुआ था। क्योंकि केवल मात्र इसी लिये कि १५५४ में जन्म मान लेने पर गोस्वामीजी की आयु १२६ वर्ष हो जाती है, १५८३ या ८६ में जन्म मानना उचित नहीं। गोस्वामीजी सरीखे वीतराग पवित्र आचरण वाले महापुरुष की इतनी आयु होना कोई बड़ी बात नहीं है।

इसके अतिरिक्त इनका जन्म १५८६ मान लेने पर मीराबाई का इन्हें पत्र लिखना असम्भव-सा जँचता है। किन्तु १५५४ में जन्म मान लेने पर यह घटना सर्वथा स्वाभाविक और सत्य सिद्ध होती है। अतः कह सकते हैं कि गोस्वामीजी के जन्म और मृत्यु की पूर्वोक्त तिथियाँ ही सर्वथा सत्य और प्रामाणिक हैं।

गंडमूल नक्षत्रों में उत्पन्न होने के कारण माता-पिता ने इन्हें जन्मते ही त्याग दिया था। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का तुलसी था। महात्मा नरहरिदास ने इनका पालन-पोषण किया। तत्पश्चात् यह काशी चले गये और २५-३० वर्ष तक सभी शास्त्रों का व्यापक अध्ययन किया। तदनन्तर ये गृहस्थ-आश्रम में प्रविष्ट हुए और अपनी पत्नी के प्रति इतने आसक्त रहने लगे कि एक बार उसके मायके चले जाने पर ये भी पीछे हो लिये। इस पर उसने ऐसे मार्मिक वाक्य कहे कि जिनके प्रभाव से गोस्वामीजी मायापाश को तोड़ अनन्य भगवद्भक्त हो गये।

इस घटना के पश्चात् उन्होंने भारत के सभी तीर्थों की यात्रा की। तत्पश्चात् काशी के महान् पण्डित शेष सनातन से अन्यान्य शास्त्रों का अध्ययन किया। फिर अयोध्या तथा काशी में रहकर 'रामचरितमानस' की रचना की।

गोस्वामीजी भक्तशिरोमणि महाकवि तो थे ही, साथ ही सबसे बड़े सुधारक भी थे। उन्होंने शैवों और वैष्णवों का विरोध दूर किया, निगुन-पंथी कबीर आदि के द्वारा प्रचारित वेद-शास्त्रों की निन्दा और प्राचीन भारतीय संस्कृति के खंडनात्मक विषैले प्रभाव को अपनी अमृतमयी वाणी से दूर कर भारतीय जनता को फिर से वास्तविक धर्म का रूप दिखाया और वेद-शास्त्रों के प्रति श्रद्धा जागृत की। कृष्ण भक्तों द्वारा प्रचारित विज्ञासिता की बाढ़ को रोककर कर्मयोग का प्रचार किया। इसके अतिरिक्त अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के द्वारा संस्कृत, अवधी तथा ब्रज तीनों भाषाओं में; प्रबन्ध, मुक्तक गीत, कवित्त, सवैया आदि सभी शैलियों में; भक्ति, वात्सल्य, करुण, वीर, शृङ्गार आदि सभी रसों और विषयों पर मनोहारिणी रचनाएँ लिख कर साहित्य और समाज की जो सेवा गोस्वामीजी ने की है, वह भारतीय साहित्य में चिरस्मरणीय रहेगी। गोस्वामीजी वस्तुतः हिन्दी-साहित्याकाश के सूर्य ही थे। उन्होंने लगभग २० पुस्तकें लिखीं जिनमें से निम्नलिखित अत्यन्त प्रसिद्ध हैं :—

- १—रामचरितमानस । २—कवितावली । ३—गीतावली ।
- ४—विनयपत्रिका । ५—कृष्ण-गीतावली । ६—दोहावली ।
- ७—पार्वती-मङ्गल । ८—जानकी-मङ्गल ।

मंथरा-कैकेयी-संवाद

नामु मन्थरा मन्दमति चेरी कैकेइ केरि ।

अजस पिटारी तारि करि गई गिरा मति फेरि ॥

देखि मन्थरा नगरु बनावी । मंजुल मङ्गल बाज बधावा ॥

पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू । राम तिलकु सुनि भा उर दाहू ॥

करइ विचारि कुबुद्धि कुजाती । होइ अकाज कवन विधि राती ॥

देवि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गँवतकइ लेउँ केहि भाँति ॥

भरत मातु पहुँ गई बिलखानी । का अनमनि हमि कह हँसिरानी ॥

उतरु देइ न लेइ उसांसू । नारि चरित कहि ढारइ आँसू ॥

हँसि कह रानी गालु बड़ तोरे । दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे ॥

तबहुँ न बोलि चेरि बड़ि पापिनि । छाड़इ स्वाँस कारि जनु साँपिनि ॥

सभय रानि कह कहसि किन, कुसल रामु महिपालु ॥

लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि, भा कुवरी उर सालु ॥

कत सिख देइ हमहिं कोउ भाई । गालु करव केहि कर बलु पाई ॥

रामहिं छाड़ि कुसल केहि आजू । जेहि जनेसु देई जुवराजू ॥

भयउ कौसलहिं विधि अति दाहिन । देखत गरव रहत उर नाहिन ॥

देखहु कस न जाइ सब सोभा । जो अवलोकि मोर मनु छोभा ॥

पूतु विदेस न सोचु तुम्हारे । जानति हहु बस नाहु हमारे ॥

नींद बहुत प्रिय सेज तुराई । लखहु न भूप कपट चतुराई ॥

सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी । भुकि रानि अव रहु अरगानी ॥

पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी । तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी ॥

काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि ।

तिय बिसेषि पुनि चेरे कहि, भरत मातु मुस्कानि ॥ .

प्रियवादिनि सिख दिन्हिउँ तोहीं । सपनेहुँ तो पर कोपु न मोहीं ॥

सुदिनु सुमङ्गल-शायकु सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥

जेठ स्वामी सेवक लघु भाई । यह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥

राम तिलकु जौ साँचहुँ काली । देउँ मांगु मन भावत आली ॥

कौसल्या सम सब महतारी । रामहि सहज सुभायं पियारी ॥

मो पर करहि सनेहु बिसेषी । मैं करि प्रीति परीक्षा देखी ॥

जौ विधि जनमु देइ करि छोहू । होहुँ राम सिय पूत पुतोहू ॥

आण तें अधिक रामु प्रिय मोरे । तिन्हके तिलक दोभु कस तोरे ॥

भरत सपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराड ।

हरष समय विसमउ करसि, कारन मोहि सुनाउ ॥

एकहि बार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥

फोरै जोगु कपार अभागा । भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा ॥

कहहि भूठि पुनि बात बनाई । ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई ॥

हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती । नाहिन मौन रहब दिनराती ॥

करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा । बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ॥

कोउ नृप होउ हमहि का हानी । चेरे छाँड़ि अब होवकि रानी ॥

जारै जोगु सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥

तातें कछुक बात अनुसारी । छमिअ देवि बड़ि चूक हमारी ॥

गूढ़ कपट प्रिय वचन सुनि, तीय अधर बुधि रानि ।

सुरमाया बस बैरिनिहि, सुहृदि जानि पतियानि ॥

सादर पुनि पुनि पूँछत ओही । सबरी गान मृगी जनु मोही ॥
 तसि मति फिरी अहइ जसि भावी । रहसी चेरि घात जनु फावी ॥
 तुम्ह पूँछहु मैं कहत डराऊँ । धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ ॥
 सजि प्रतीति बहुविधि गढ़ि छोली । अवध साढ़साती तब बोली ॥
 प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी । रामहि तुम्ह प्रिय सो फुर बानी ॥
 भानु कमल कुल पोषनिहारा । बिनु जल जारि करइ सोइ छारा ॥
 जरि तुम्हारि चह सवति उखारी । रूंधहु करि उपाउ बर बारी ॥

तुम्हहि न मोचु सोहाग बल, निज बस जानहु राउ ।

मन मलीन मुह मीठ नृपु, राउर सरल सुभाउ ॥

चतुर गँभीर राम महतारी । बीचु पाइ निज बात सँवारी ॥
 पठए भरत भूप ननिअउरे । राम-मात मत जानव रउरे ॥
 सेवहि सकल सवति मोहि नीके । गरवित भरत मातु बल पीके ॥
 सालु तुम्हार कौसलहि माई । कपट चतुर नहि होइ जनाई ॥
 राजहि तुम्ह पर प्रेमु विसेखी । सवति सुभाउ सकइ नहि देखि ॥
 रचि प्रपञ्च भूपहि अपनाई । राम तिलक हित लगन धराई ॥
 वह कुल उचित राम कहूँ टीका । सबहि सोहाइ मोहि सुठ नीका ॥
 आगिलि बात समुझि डरु मोही । देउ दैउ फिरि सो फलु ओही ॥

रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु ।

कहसि कथा शत सवति कै, जेहि विधि बाढ़ विरोधु ॥

भावी बस प्रतीति उर आई । पूछि रानि पुनि समय दिवाई ॥
 का पूँछहु अबहुँ नहि जाना । निज हित अनहितु पसु पहिचाना ॥
 भयउ पाखु दिन सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ॥

खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारे । सत्य कहे नहिं दोष हमारे ॥
 जौ असत्य कछु कहब बनाई । तौ विधि देइहि हमहिं सजाई ॥
 रामहिं तिलक कालि जौ भयऊ । तुम कहूँ विपति बीजु विधि बयऊ ॥
 रेख खँचाइ कहउँ बल भाषी । भामिनि भइउ दूध कइ माखी ॥
 जौ सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥

कद्रू विनतहि दीन्ह दुख, तुमहिं कौसिला देव ।

भरतु बंदिगृह से इहहिं, लखनु राम के नेव ॥

ककयसुता सुनत कटु बानी । कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी ॥
 तन पसेउ कदली जिमि काँपी । कुवरी दसन जीभ तव चाँपी ॥
 कहि कहि कोटिक कपट कहानी । धीरजु धरहु प्रबोधसि रानी ॥
 फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली । बकिहि सराहइ मानि मराली ॥
 सुनु मन्थरा बात फुरि तोरी । दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी ॥
 दिन प्रति देखउँ राति कुसपने । कहउँ न तोहिं मोह बस अपने ॥
 काह करौँ सखि सूध सुभाऊ । दाहिन बाम न जानउँ काऊ ॥

अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह ।

केहिं अभ एकहिं बार मोहिं, दैव दुसह दुःख दीन्ह ॥

नैहर जनमु भरव बरु जाई । जिअत न करबि सवति सेवकाई ।
 अरि बस दैउ जिआवत जाही । मरनु नीक तेहिं जीवन चाही ॥
 दीन बचन कह बहुविधि रानी । सुनि कुवरी तियमाया ठानी ॥
 अस कस कहहु मानि मन ऊना । सुख सोहागु तुम्ह कहँदिन दूना ॥
 जेहिं राउर अति अनभल ताका । सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका ॥
 जब तें कुमत सुना मैँ स्वामिनि । भूख न बासर नौद न जामिनि ॥

पूँछेउँ गुनन्हि रेख तिन्ह खांची । भरत भुआल होहिं यह साँची ॥
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ । है तुम्हरी सेवा बस राऊ ॥

परउँ कूप तुअ वचन पर, सकउँ पूत पति त्यागि ।
कहसि मोर दुखु देखि बड़, कस न करब हित लागि ॥

कुबरी करि कुबली कैकेई । कपट छुरी उर पाहन टेई ॥
लखत न रानि निकट दुखु कैसे । चरइ हस्ति तिन बलिपशु जैसे ॥
सुनत बात मृदु अन्त कठोरी । देति मनहुँ मधु माहुर घोरी ॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाही । स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाही ॥
दुइ बरदान भूप सन थाती । माँगहु आजु जुड़ावहु छाती ॥
सुतहि राजु रामहिं बनवासू । देहु लेहु सब सवति हुलासू ॥
भूपति राम सपथ जव करई । तव मांगेहु जेहिं वचनु न टरई ॥
होइ अकाजु आजु निसि वोते । बचनु मोर धिय मानेहु जीते ॥

बड़ कुघातु करि पातकिनि, कहेसि कोपगृह जाहु ।
काजु सँवारेहि सजग सबु, सहसा जनि पतिआहु ॥

कुवरिहि रानि प्रानप्रिय जानी । बार बार बड़ि बुद्धि बखानी ॥
तोहि सम हितु न मोर संसारा । बहे जात कर भइसि अधारा ॥
जौ विधि पुरब मनोरथु काली । करौं तोहि चख पूतरि आली ॥
बहुविधि चेरिहि आदरु देई । कोपभवन गवनी कैकेई ॥
विपति बीजु वरषा रितु चेरी । भुहँ भइ कुमति कैकेई केरी ॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा । बर दोउ दल दुख फल परिनामा ॥

राम-धाम

जिन्ह के श्रवण समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभगि सरि नाना ॥
 भरहिं निरंतर होहिं न पूरे । तिनके हिय तुम कह गृह रूरे ॥
 लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहिं दरश जलधर अभिलाषे ॥
 निदरहिं सिंधु सरित सर वारी । रूप बिन्द जन होहिं सुखारी ॥
 तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक । बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ॥

यश तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहा जासु ।

मुक्ताहल गुन गन चुनई, राम बसहु मन तासु ॥

प्रभु प्रसाद शुचि सुभग सुवासा । सादर जासु लहहिं नित नासा ॥
 तुमहिं निवेदित भोजन करहीं । प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं ॥
 सीस नवहिं सर गुरु द्विज देखी । प्रीति सहित करि विनय विशेषी ॥
 कर नित करहिं रामपद पूजा । राम भरोस हृदय नहिं दूजा ॥
 चरन राम तीरथ जल जाहीं । राम बसहु तिनके मन माहीं ॥
 मंत्रराज नित जपहिं तुम्हारा । पूजहिं तुमहिं सहित परिवारा ॥
 तर्पण होम करहिं विधि नाना । विप्र जिमाइ देहि बहु दाना ॥
 तुम्हें ते अधिक गुरुहिं जिय जानी । सकल भाव सेवहिं सनमानी ॥

सब कर माँगहिं एक फल, राम चरण रति होउ ।

तिन्ह के मन मन्दिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ ॥

काम क्रोध मद मान न मोहा । लोभ न छोह न राग न द्रोहा ॥
 जिन्ह के कपट दम्भ नहिं माया । तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ॥
 सब के प्रिय सब के हितकारी । सुख दुख सरिस प्रशंसा गारी ॥
 कहहिं सत्य प्रिय बचन विचारी । जागत सोवत शरण तुम्हारी ॥

तुमहिं छाँड़ि गति दूसरी नाही । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
 जननी सम जानहिं पर नारी । धन पराय विष ते विष भारी ॥
 जे हर्षहिं पर सम्पति देखी । दुखित होहिं पर विपति विशेषी ॥
 जिनहिं राम तुम प्राण पियारे । तिन्ह के मन शुभ सदन तुम्हारे ॥

स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिनके सब तुम्ह तात ।

मन मंदिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥

अवगुण तजि सबके गुण गहहीं । विप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
 नीति निपुण जिन्ह के जग लीका । घर तुम्हार तिन्हकर मन नीका ॥
 गुण तुम्हार समकै निज दोसा । जेहिं सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
 राम भक्त प्रिय लागहिं जेही । तेहिं उर बसहु सहित वैदेही ॥
 जाति पाँति धन धर्म बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
 सब तजि तुम्हहिं रहै लव लाई । तेहिं के हृदय रहहु रघुराई ॥
 सर्ग नर्क अपवर्ग समाना । जहँ तहँ देख धरे धनु बाना ॥
 कर्म वचन मन राउर केरा । राम करहु तेहि के उर डेरा ॥
 जाहि न चाहिय कवहुँ कछु, तुम्हँ सन सहज सनेह ।
 बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेह ॥

राम-राज्य

राम राज बैठे त्रैलोका । हर्षित भए गए सब सोका ॥
 बयरु न कर काहू सन कोई । राम प्रताप विषमता खोई ॥
 बरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोक ।
 चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय रोग न सोक ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहिं काहुहिं व्यापा ॥
 सबु नर करहिं परस्पर प्रीती । चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति ॥
 चारिउँ चरन धर्म जग माहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अब नाहीं ॥
 राम भगति रत नर अरु नारी । सकल परमगति के अधिकारी ॥
 अल्प मृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा । सब सुन्दर सब विरुज सरीरा ॥
 नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥
 सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
 सब गुनग्य सब पंडित ग्यानी । सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ॥

राम-राज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहिं ।

काल कर्म सुभाव गुण, कृत दुख काहुहि नाहिं ॥

भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ॥
 मुअन अनेक रोम प्रति जासू । यह कछु प्रभुता बहुत न तासू ॥
 सो महिमा समुक्त प्रभु केरी । यह बरनत हीनता घनेरी ॥
 सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी । फिरि एहि चरित तिनहुँ रति मानी ॥
 सोउ जाने कर फल यह लीला । कहहिं महा मुनिवर दमसीला ॥
 राम राज कर सुख संपदा । बरनि न सकइ फनीस सारदा ॥
 सब उदार सब पर उपकारी । निप्र चरन सेवक नर नारी ॥
 एक नारि व्रत रत सब भारी । ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज ।

जीतहु मनहिं सुनिअ अस, रामचन्द्र के राज ॥

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । रहहिं एक संग गज पंचानन ॥
 खग मृग सहज बयरु विसराई । सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई ॥

कूजहिं खग मृग नाना वृन्दा । अभय चरहिं वन करहिं अनन्दा ॥
 सीतल सुरभि पवन वह मन्दा । गुञ्जत अलि लै चलि मकरन्दा ॥
 लता विटप मार्गें मधु चवहीं । मन-भावतो धेनु पय स्रवहीं ॥
 ससि सम्पन्न सदा रह धरनी । त्रेता भइ कृत-जुग कै करनी ॥
 प्रगटों गिरिन्ह विविध मनि खानी । जगदातमा भूप जग जानी ॥
 सरिता सकल बहहिं बर बारी । सीतल अमल स्वाद सुखकारी ॥
 सागर निज मरजादा रहहीं । डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं ॥
 सरसिज संकुल सकल तड़ागा । अति प्रसन्नदस दिसा विभागा ॥

विधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज ।
 मांगे बारिद देहिं जल रामचन्द्र के काज ॥

कलि-महिमा

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए भद्रग्रन्थ ।
 दंभिन्ह निज मति कल्प करि प्रगट किए बहु ग्रन्थ ॥
 भए लोग सब मोहबस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म ।
 सुनु हरिजान सुग्याननिधि, कहउं कछुक कलिधर्म ॥

बरन धरम नहिं आस्रम-चारी । स्तुति-विरोध-रत सब नर नारी ॥
 द्विज स्तुति वेचक भूप प्रजासन । कोउ नहिं मान-निगम-अनुसासन ॥
 मारग सोइ जाकहँ जोइ भावा । पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥
 मिथ्यारंभ दंभ-रत जोई । ताकहँ संत कहहिं सब कोई ॥
 सोइ सयान जो पर-धन-हारी । जो कर दंभ सो बड़ आचारी ॥
 जो कह भूठ मसखरी जाना । कलिजुग सोइ गुनवन्त बखाना ॥

निराचार जो स्त्रुति-पथ-त्यागी । कलियुग सोइ ग्यानी बैरागी ॥
जाके नख अरु जटा बिसाला । सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥

असुभ वेष भूषन धरे भच्छाभच्छ जे खाहिं ॥
ते ही जोगी सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहिं ॥
जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य बहु ॥
मन क्रम वचन लवार ते बक्ता कलिकाल महँ ॥

नारि बिबस नर सकल गोसाईं । नाचहिं नट मरकट की नाई ॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना । मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥
सब नर काम-लोभ-रत क्रोधी । वेद-विप्र-स्त्रुति-सन्त-बिरोधी ॥
गुनमन्दिर सुन्दर पति त्यागी । भजहिं नारि परपुरुष अभागी ॥
सौभागिनी विभूषनहीना । विधवन्ह के सृंगार नवीना ॥
गुरु-सिषि बधिर अंध का लेखा । एक न सुनहिं एक नहिं देखा ॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई । सो गुरु घोर नरक महँ परई ॥
मातु-पिता बालकन्ह बोलावहिं । उदर भरै सोइ धरम सिखावहिं ॥

ब्रह्मग्यान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरि बात ।
कौड़ी कारन लोभवस, करहिं विप्र-गुरु घात ॥
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्हते कछु घाटि ।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि देखावहिं डाटि ॥
परतिय लंपट कपट सयाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेदबादी ज्ञानी नर । देखेउँ मैं चरित्र कलिजुग कर ॥
आपु गए अरु औरनि घालहिं । जे कहिं सत मारग प्रतिपालहिं ॥
कल्प कल्प भरि एक-एक नरका । परहिं जे दूषहिं स्त्रुति करि तरका ॥

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा । स्वपच किरात कोल कलवारा ॥
 नारि मुई गृह संपति नासी । मूँड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी ॥
 ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहिं । उभय लोक निज हाथ नसावहिं ॥
 विप्र निरच्छर लोलुप कामी । निराचार सठ बृपली स्वामी ॥
 सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥
 सब नर कल्पित करहि अचारा । जाइ न बरनि अनीति अपारा ॥

भए बरन-संकर सकल भिन्नसेतु सब लोग ।

करहिं पाप दुख पावहिं भय रुज सोक वियोग ॥

स्रुति सम्मत हरिभक्त पथ संजुत विरत विवेक ।

तेहि न चलहिं नर मोहबस कल्पहि पंथ अनेक ॥

बहु दाम सँवारहि दाम जती । विषया हरि लीन गई बिरती ॥
 तपसी धनवन्त दरिद्र गृही । कलिकौतुक तात न जात कही ॥
 कुलवन्त निकारहिं नार सती । गृह आनहिं चेरि निवेरि गत्ती ॥
 सुत मानहिं मात पिता तबलौं । अबला नहिं डीठ परी जबलौं ॥
 ससुरारि पियारि लगी जबतें । रिपुरूप कुटुम्ब भयौ तबतें ॥
 नृप पाप-परायन धर्म नहीं । करि दण्ड बिडम्ब प्रजा नितहीं ॥
 धनवन्त कुलीन मलीन अपी । द्विज चिह्न जनेउ उधार तपी ॥
 नहिं मान पुरानन्ह वेदहिं जो । हरिसेवक सन्त सही कलि सो ॥
 कवि वृन्द उदार दुनी न सुनी । गुन-दूषन बात न कोपि गुनी ॥
 कलि बारहिं बार दुकाल परै । बिन अन्न दुखी सब लोग मरै ॥

सुनु खगेस कलि कपट हठि, दम्भ द्वेष पाखण्ड ।

मान मोह मारादि व्यापि रहे ब्रह्मण्ड ॥

तामस धर्म करहिं नर जप तप व्रत मख दान ।

देव न वरषहिं धरनि पर बये जामहि धान ॥

अबला कच भूषन भूरि छुधा । धनहीन दुखी ममता बहुधा ॥

सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता । मति थोरि कठोर न कोमलता ॥

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं । अभिमान विरोध अकारनहीं ॥

लघु जीवन संबत पंचदसा । कलपांत न नास गुमान असा ॥

कलिकाल बिहाल किए मनुजा । नहिं मानत को अनुजा तनुजा ॥

नहिं तोष विचारन सीतलता । सब जाति कुजात भए मँगता ॥

इरपा परुषाच्छर लोलुपता । भरि पूरि रही समता बिगता ॥

सब लोग बियोग बिसोक हुए । बरनास्त्रम धर्म अचार गए ॥

दम दान दया नहिं जानपनी । जड़ता पर बंचनतातिं घनी ॥

तनुपोषक नारि नरा सगरे । परनिंदक जे जग में बगरे ॥

सुनु व्यालारि कराल कलि मल अवगुन आगार ।

गुनहु बहुत कलिजुग करि बिनु प्रयास निस्तार ॥

यज्ञ-रक्षा

ऋषि सँग हरषि चले दोउ भाई ।

पितु पद बन्दि सील लियो आयसु, सुनि सिष आसिष पाई ॥

नील पीत पाथोज बरन बपु, बय किसोर बनि आई ।

सर धनुपानि, पीत पट कटितट, कसे निखंग बनाई ॥

कलित कंठ मनि माल, कलेवर चन्दन खौरि सुहाई ।

सुन्दर बदन, सरोरुह लोचन, मुखछवि बरनि न जाई ॥

पल्लव, पंख, सुमन सिर सोहत क्यों कहों बेप-लुनाई ।
 मनु मूरति धरि उभय भाग भइ त्रिभुवन सुन्दरताई ॥
 पैठत सरनि, सिलनि चढ़ि चितवत खग-मृग बन रुचिराई ।
 सादर समय सप्रेम पुलकि मुनि पुनि लेत बुलाई ॥
 एक तीर तकि हती ताड़का विद्या बिप्र पढ़ाई ।
 राख्यो जग्य जोति रजनीचर, भइ जग-विदित बड़ाई ॥
 चरन-कमल-रज-परस अहल्या निज पति-लोक पठाई ।
 तुलसीदास प्रभु के बूझे मुनि सुरसरि कथा सुनाई ॥

दोउ राजसुवन राज मुनि के सङ्ग ।

नखसिख लोने, लोने बदन, लोने लोचन, दामिनि-बारिद
 बरबरन अङ्ग ॥

सिरनि सिखा सुहाइ, उपवीत पीत पट, धनु-सर कर, कसे
 कटि निखंग ।

मानो मख-रुज निसिचर हरिबेको सुत पावक के साथ पठये
 पतंग ॥

करत छाँह घन, बरपै सुमन सुर, छवि बरनत अतुलित अनंग ।
 तुलसी प्रभु बिलोकि मग-लोग, खग-मृग प्रेम-मगन रंगे रूप-रंग ॥



कौशल्या की चिन्ता

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहहिंगे ?

भूख, पियास, सोत, स्रम सकुचति क्यों कौसिकहिं कहहिंगे ?
को भोर ही उबटि अन्हवैहै, काढ़ि कलेऊ दैहै ?
को भूषन पहिराइ, निछावरि करि लोचन-सुख लैहै ?
नयन निमेषनि ज्यों जोगवैं नित पितु-परिजन-महतारी ।
ते पठए ऋषि साथ निसाचर, मारन, मख रखवारी ॥
सुन्दर सुठि सुकुमार सुकोमल, काक-पच्छ-धर दोऊ ।
तुलसी निरखि हरषि उर लैहौं विधि ह्वै है दिन सोऊ ॥

जबतें लै मुनि संग सिधाए ।

राम-लखन के समाचार, सखि ! तबतें कछुअ न पाए ॥
बिनु पनही गमन, फल भाजन, भूमि सयन तरुछाहीं ।
सर-सरिता जलपान सिसुन के अंग सुसेवक नाहीं ॥
कौसिक परम कृपालु, परमहित समरथ सुखद सुचाली ।
बालक सुठि सुकुमार सकोची, समुझि सोच मोहि आली ॥
बचन सप्रेम सुमित्रा के सुनि सब सनेह-बस रानी ।
तुलसी आइ भरत तेहि औसर कही सुमंगल बानी ॥



श्रीकृष्ण की बाल-लीला

मोकह भूँठहिं दोष लगावहिं ।

मैया इनहिं बानि पर गृह की, नाना युक्ति बनावहिं ॥
 इन्ह के लिये खेलबो छाँड्यो, तऊ न उबरन पावहिं ।
 भाजन फोरि बोरिकर गोरस, देन उलहनों आवहिं ॥
 कबहुँक बाल रुबाइ पानि गहि मिस, यहि करि उठि धावहिं ।
 करहिं आपु शिर धरहिं आन के, बचन विरंचि हरावहिं ॥
 मेरी टेव बूझ हलधर सों, संतत संग खेलावहिं ।
 जे अन्याउ करहिं काहू को, ते शिशु मोहि न भावहिं ॥
 सुनि सुनि बचन चातुरी, ग्वालनि हँसि हँसि बदन दुरावहिं ।
 बाल गोपाल केलि कलि कीरति, 'तुलसीदास' मुनि गावहिं ॥

अवहिं उरहनो दै गई बहुरि फिरि आई ।

सुनु मैय्या तेरी सों याकी लरन की सकुच बेचेसि खाई ॥
 या ब्रज में लरिका, घने हौंही अन्याई ।
 मुँह लाए मूडहि चढ़ी अंतहु, अहिरिनि तोहि सूधी करि पाई ॥

छोड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई ।

ऐहै देखु कालि तेरे बै, व्याह की बात चलाई ॥
 डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि, हँसि है नई दुलहिआ सुहाई ।
 उबटि नहाहु गुहों चुटिया बलि देखौं, भलो वर करहिं बड़ाई ॥
 मातु कह्यो कर कहत बोलि दे भइ, बड़िवार कालि तो न आई ।
 जब सोइबो तात यों हाँ कहि, नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई ॥

उठि कह्यो भोर भयो भंगुली दै, मुदित महर लखि आतुरताई ।
बिहँसी ग्वालि जान 'तुलसी' प्रभु, सकुचि लगे जननी उर धाई ॥

राम-विवाह

नगर निसान बर बाजै, व्योम दंदुभी,
बिमान चढ़ि गान कै कै सुरनारि नाचहीं ।
जय जय तिहुँ पुर, जयमाल राम उर,
बरवै सुमन सुर, रुरे रूप राचहीं ॥
जनक को पन जयौ, सब को भावतो भयौ,
तुलसी मुदित रोम रोम मोद माचहीं ।
सांवरो किसोर, गोरी सोभा पर तृण तोरि,
“जोरी जियौ जुगजुग” सखीजन जाँचहीं ॥
दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं ।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दर, वेद, जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं ॥
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं ।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारत नाहीं ॥



वनवास

सिथिल सनेह कहै कौसिला सुमित्राजु सों,
मैं ना लखी सौति, सखी ! भगिनी ज्यों सेई है ।
कहैं मोहि मैया, कहौ “मैं न मैया भरत की,
बलैया लैहौ, भैया ! तेरी मैया कैकेयी है” ॥

‘तुलसी’ सरल भाय रघुराय माय पानी,
 काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है ।
 बाम विधि मेरो सुख सिरिस-सुमन सम,
 ताको छल-छुरी कोह-कुलिस लै टेई है ॥

“कीजै कहा, जीजी जू !” सुमित्रा परि पांय कहै,
 ‘तुलसी’ सहावै विधि सोई सहियतु है ।

रावरो सुभाव राम-जन्म ही तें जानियत,
 भरत को मातु को कि ऐसे चाहियतु है ॥

जाई राजघर, व्याहि आई राजघर मांह,
 राज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है ।

देह सुधागेह ताहि मृगहू मलीन कियो,
 ताहु पर बाहु बिनु राहु गहियतु है ॥

पुर तें निकसी रघुवीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
 भलकी भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर बै ॥
 फिर बूझति हैं “चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै ?”
 तिय की लख आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चली जलचवै ॥
 सीस जटा, उर बाहु विसाल, बिलोचन लाल, तिरछी सी भौहैं ।
 तून सरासन बान धरै, तुलसी बन-मारग में सुठि सौहैं ॥
 सादर बारहि बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं ।
 पूछति ग्राम बधू सि सों “कहौ साँवरे से, सखि रावरे कोहैं ?”
 सुनि सुन्दर बैन सुधा-रस-साने, सयानी है जानकी जानी भली ।
 तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसकाइ चली ॥

तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली ।
 अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज कली ॥
 सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि, पानि सरासर सायक लै ।
 बन खेलत राम फिरें मृगया, तुलसी छवि सो बरनै किमि कै ?
 अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै ।
 न डगैं, न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है ॥



रहीम

जीवन-परिचय

जन्म सं १६१० देहली में ।

मृत्यु सं० १६८२ चित्रकूट में ।

अब्दुल रहीम खानखाना सम्राट् अकबर के अभिभावक बैरमखाँ के सुपुत्र थे । ये अकबर के नवरत्नों में से एक और सेनापति थे । पश्चात् प्रधानमन्त्री-पद पर प्रतिष्ठित हुए । ये जितने बड़े विद्वान् कवि थे, उतने ही बड़े शूरवीर तथा उदार व दानी भी थे । विद्वत्ता, वीरता और उदारता—इन तीनों गुणों का एकत्र समावेश रहीम को छोड़ हमें अन्य किसी भी हिन्दी कवि में नहीं मिलता । क्योंकि ये अरबी, फ़ारसी, तुर्की, संस्कृत, ब्रज, अवधी और खड़ी बोली आदि अनेक भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित थे, अतः इन सभी भाषाओं में इन्होंने अत्यन्त मार्मिक और सरस रचनाएँ लिखी हैं ।

इनकी उदारता का परिचय—

तब ही लग जीवो भलो, दीवो परै न धीम ।

बिन दीवो जीवो जगत, हमहिं न रुचै रहीम ॥

आदि पदों से तो मिलता ही है । साथ ही इसका क्रियात्मक प्रमाण यह भी है कि केवल दो छन्द सुनकर इन्होंने गंग कवि को छत्तीस लाख रुपया पारितोषिक दे डाला था । इतने पर भी दान देते समय यह अपनी आँखें सदा नीची रखा करते थे, इसलिए गंग ने इनसे पूछा कि—

सीखे कहाँ नवाब जू, ऐसी देनी दैन ।
ज्यों ज्यों कर ऊँचों करो, त्यों त्यों नीचे नैन ॥

इस पर रहीम ने उत्तर दिया कि—

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन ।
लोग भरम हम पै धरैं, याते नीचे नैन ॥

अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहाँगीर ने राज-विद्रोह के अभि-
योग में इन्हें कैद कर लिया और सारी सम्पत्ति भी छीन ली । कैद
से छूटकर ये एक दरिद्र की भाँति चित्रकूट पर दिन बिताने लगे ।
अपनी इस दरिद्रावस्था का इन्होंने बहुत सुन्दर और करुणाजनक
वर्णन—

अब रहीम घर घर फिरे माँगि मधुकरी खाहिं ।

यारो यारी छोड़ि दो, अब रहीम वह नाहिं ॥

आदि कई दोहों में किया है ।

रहीम मुसलमान होते हुए भी हृदय से सच्चे हिन्दू और अनन्य
भक्त थे । ‘धूर धरत निज शीश पै’ आदि दोहे इनकी रामभक्ति का
अत्युत्कृष्ट उदाहरण हैं । इनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह
है कि इन्होंने जो-कुछ लिखा है, वह सुना-सुनाया न होकर अपने
जीवन के अनुभव के आधार पर लिखा है । इसीलिए इनका प्रत्येक
दोहा या पद अत्यन्त मार्मिक और प्रभावशाली बन पड़ा है । शायद
ही कोई हिन्दी-भाषी हो जिसकी जिह्वा पर कोई-न-कोई रहीम का
दोहा विराजमान न हो ।

ये गोस्वामी तुलसीदास जी के अनन्य मित्र व भक्त भी थे। जैसा कि पहले कह चुके हैं, इन्होंने अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, हिन्दी आदि अनेकों भाषाओं में तथा शृङ्गार, भक्ति, नीति, ज्योतिष आदि अनेकों विषयों पर बड़ी सुन्दर रचनाएँ लिखी हैं। इस प्रकार अनेक भाषाओं में लिखने वाले ये हिन्दी के एक-मात्र कवि हैं। इनकी (१) रहीम सतसई (२) मदनाष्टक (३) बरवै नायिका-भेद (४) खेट कौतुकम् (५) शृङ्गार सोरठा आदि पुस्तकें प्रसिद्ध हैं।



सूक्ति-सुधा

अच्युत - चरण - तरंगिनी, सिव - सिर - मालति - माल ।
हरि न बनाओ सुर-सरी, कीजो इन्द्र-भाल ॥
जिहि 'रहीम' चित आपनो, कीन्हों चतुर चकोर ।
निसि-वासर लाग्यो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥
सब कोऊ सब सों करै, राम-जुहार सलाम ।
हित अनहित तब जानिये, जा दिन अटके काम ॥
जो 'रहीम' करिबो हुतो, ब्रज को यही हवाल ।
तौ नाहक कर पर धर्यो, गोवर्धन गोपाल ॥
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोइ ।
जो 'रहीम' दीनहिं लखै, दीन बन्धु सम होइ ॥
कमला थिर न 'रहीम' कहि, यह जानत सब कोइ ।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होइ ॥
छोटे काम बड़े करै, तो न बड़ाई होइ ।
ज्यों 'रहीम' हनुमन्त कहँ, गिरधर कहे न कोइ ॥
'रहिमन' मनहिं लगाय के, देखि लेहु किन कोय ।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होइ ॥
ये 'रहीम' घर घर फिरै, माँगि मधुकरी खाहिं ।
यारो यारी छोड़ि दो, अब रहीम वे नाहिं ॥
दीरघ दोहा अर्थ के, आखर थोड़े आहिं ।
ज्यों 'रहीम' नट कुण्डली, सिमिट कूदि कदि जाहिं ॥

तब ही लग जीबो भलो, दीबो परै न धीम ।
 बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै 'रहीम' ॥
 जो 'रहीम' ओछो बढे, तौ अति ही इतराइ ।
 प्यादे से फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाइ ॥
 आपु न काहू काम के, डार पात फल मूर ।
 औरन को रोकत फिरै, 'रहिमन' कूर बबूर ॥
 'रहिमन' अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ ।
 जाहि निकारौ गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥
 'रहिमन' मन महाराज के, दृग सों नाहिं दिवान ।
 देखि जाहि रीझै नयन, मन तेहि हाथ बिकान ॥
 जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह ।
 'रहिमन' मछरी नीर को, तऊ छाँडति छोह ॥
 बढ़त 'रहीम' धनाढ्य धन, धनै धनी कहँ जाइ ।
 वटै बढै तिन कर कहा, भीख माँगि जे खाइ ॥
 काज परै कछु और है, काज सरै कछु और ।
 'रहिमन' भउँरिन के भये, नदी सिरावत मौर ॥
 कदली, सीप, भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन ।
 जैसी संगति बैठिये, तैसोई गुन दीन ॥
 सीत हरत तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक ।
 'रहिमन' तेहि रवि को कहा, जो घटि लखै उलूक ॥
 यों रहीम सुख होत है, उपकारी के संग ।
 बाँटन वारे के लगै, ज्यों मेंहदी को रंग ॥

'रहिमन' करि सम बल नहीं, मानत प्रभु कै धाक ।
 दांत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक ॥
 जहाँ गाँठ तहाँ रस नहीं, यह जानत सब कोय ।
 मड़ये-तर कै गाँठि में, गाँठि गाँठि रस होय ॥
 'रहिमन' बहु भेषज करत, व्याधि न छांड़ति साथ ।
 खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ ॥
 अनुचित बचन न मानिये, जदपि गुरायसि गाढ़ि ।
 है 'रहीम' रघुनाथ ते, सुजस भरत को बाढ़ि ॥
 चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेइ ।
 ज्यों 'रहीम' आटा लगै, त्यों मृदंग सुर देइ ॥
 'रहिमन' गलि है साँकरी, दूजौ ना ठहराहिं ।
 आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपन नाहिं ॥
 'रहिमन' व्याह वियाधि है, सकहु तो जाहु बचाय ।
 पायन बेड़ी परत है, ढोल बजाय बजाय ॥
 माह मास कर भिनुसरा, मीन सुखी नहिं सौर ।
 ज्यों 'रहीम' जग ना जियइ, बिछुरे आपन ठौर ॥
 'रहिमन' आटा के लगे, बाजत है दिन रात ।
 घिउ सक्कर जे खात हैं, तिन के कहा विसात ॥
 'रहिमन' रहिबो वाँ भलो, जो लौं सील समूच ।
 सील ढील जब देखिये, तुरत कीजिये कूच ॥
 'रहिमन' विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान ।
 जनम बृथा भू पर धरेउ, पसु बिनु पूँछ बिषान ॥

'रहिमन' खोटी आदि कै, सो परिनाम लखाय ।
 जैसे दीपक तम भखै, कज्जल बमन कराय ॥
 जब लगि बित्त न आपुनो, तब लगि मित्र न कोइ ।
 'रहिमन' अम्बुज अम्बु बिनु, रवि ताकर रिपु होइ ॥
 मान सहित बिष खाय कै, सम्भु भये जगदीस ।
 बिन आदर अमृत भख्यो, राहु कटायो सीस ॥
 भलो भयो घर ते छुट्यो, हस्यो सीस परि खेत ।
 काके काके नवत हम, अधम पेट के हेत ॥
 जो 'रहीम' गति दीप की, सुत सपूत की सोइ ।
 बड़ो उजेरो तेहि रहै, गये अन्धेरो होइ ॥
 जलहिं मिलाय 'रहीम' ज्यों, कियौ आप सम छीर ।
 अंगवहिं आपुहि आपु लखि, सकल आँच कै भीर ॥
 'रहिमन' मैं या पेट सौं, बहुत कहेउँ समझाइ ।
 जो तू अनखाये रहै, कब कोऊ अनखाइ ॥
 'रहिमन' घरिया रहँट कहँ, त्यों औछे कै डीठि ।
 रीतिहि सन्मुख होति है, भरी दिखावैं पीठि ॥
 खर्च बढ़्यो उद्यम घटौ, नृपति निठुर मन कीन ।
 कहु 'रहीम' कैसे जिये, थोरे जल के मीन ॥
 उरग तुरग नारी नृपति, नीच जाति हथियार ।
 'रहीम' इन्हें सँभारिये, पलटत लगे न बार ॥
 पसरि पत्र भँपहि पितहि, सकुचि देत ससि सीत ।
 कह 'रहीम' कुल कमल के, को बैरी को मीत ॥

चरन छुये मस्तक छुए, तऊँ न छाड़त पानि ।
 हियौ छुवत प्रभु छाड़ि दे, कहु 'रहीम' का जानि ॥
 दूटे सुजन मनाइये, जौ दूटे सौ बार ।
 'रहिमन' फिरि-फिरि पोहिये, दूटे मुकताहार ॥
 'रहिमन' जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग-पताल ।
 आपु तो कहि भीतर भई, जूती खात कपाल ॥
 बड़े बड़ाई ना करै, बड़े न बोलैं बोल ।
 'रहिमन' हीरा कब कहै, लाख टका है मोल ॥
 मनि मानिक महँगे किये, ससते तन जल नाज ।
 'रहिमन' याते कहत हैं, राम गरीबनेवाज ॥
 खैचि चढ़नि ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति ।
 आजि काल्हि मोहन गही, बंस दिया कै रीति ॥
 कह 'रहीम' या जगत तें, प्रीति गई दै टेरि ।
 अब 'रहीम' नर नीच में, स्वारथ स्वारथ हेरि ॥
 निज कर क्रिया 'रहीम' कह, सुधि भावी के हाथ ।
 पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥
 थोथे बादर क्वार के, ज्यों रहीम घहरात ।
 धनी पुरुष निरधन भये, करै पीछली बात ॥
 घर डर गुरु डर बंस डर, डर लज्जा डर मान ।
 डर जेहि के जिय में बसे, तिन पाया 'रहिमान' ॥
 देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन-रैन ।
 लोग भरम हम पर धरै, याते नीचे नैन ॥

काह कामरी पामरी, जाड़े गये से काज ।
 'रहिमन' भूख बुताइये, कैसेउ मिले अनाज ॥
 'रहिमन' प्रीति न कीजिये, जस खीरा ने कीन ।
 ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फांके तीन ॥
 वहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछलो हेत ।
 घटत-घटत 'रहिमन' घटै, ज्यों कर लीन्हैं रेत ॥
 समय परे ओछे बचन, सब के सहउँ 'रहीम' ।
 सभा दुसासन पट गहे, गदा रहे गहि भीम ॥
 सदा नगारो कूच कर, बाजत आठो जाम ।
 'रहिमन' या जग आइ कै, को करि रहा मुकाम ॥
 'रहिमन' मोहिं न सुहाय, अमी पियावत मान बिन ।
 बरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ॥
 'रहिमन' पुतरी स्याम, मनौं जलज मधुकर लसैं ।
 केधौं सालिगराम, रूपे के अरघा धरै ॥
 'रहिमन' जग की रीति, मैं देखा रस ऊख में ।
 ताहू में परतीत, जहाँ गाँठ तहाँ रस नहीं ॥
 'रहिमन' नीर पखान, भीजै पै सीजै नहीं ।
 तैसेइ मूरख ज्ञान, बूझे पै सूझे नहीं ॥
 बिन्दु सिन्धु समान, को कासों अचरज कहै ।
 हेरन हार हिरान, 'रहिमन' आपुहि आपु में ॥
 ओछे कौं सतसंग, 'रहिमन' तजहु अङ्गार ज्यों ।
 छूवत जारे अंग, सीरै पै कारो करै ॥

विधना यह जिय जानि कै, सेसहि दिये न कान ।

धरा मेरु सब डोलिहैं, तान सेन के तान ॥

जाके सिर अस भार, सो कस भोंकत भार अस ।

‘रहिमन’ उतरे पार, भार भोंकि सब भार में ॥

पेट चाहे अन, तन चाहत छदन,

मन चाहत है धन, जेति सम्पदा सराहिबी ।

तेरोई कहाय कै, ‘रहीम’ कहै दीनबन्धु,

आपुन विपत्ति जाय, काके द्वार काहिबी ।

पेट भर खायो चहै, उद्यम बनायो चहै,

कुटुम जियायो चहै काढ़ि गुन लाहिबी ।

जीविका हमारी, जो पै औरन के कर डारी,

ब्रज के बिहारी, तौ तिहारी कहा साहिबी ।

दीनै चहै करतार जिन्हैं सुख, कौन ‘रहीम’ सकै तिहि टारे ।

उद्यम कोउ करो न करो, धन आवत है बिन ताके हंकारे ॥

देव हँसे सब आपुस में, विधि के परपंच कोऊ न निहारे ।

बेटा भये बसुदेव के धाम औ, दुन्दुभी बाजत नन्द के द्वारे ॥

सुनिये विटप प्रभु पुहुप तिहारो हम,

राखियो हमें तो शोभा रावरी बढ़ाइ हैं ।

तजि हौ हरष विरष है न चारौ कलु,

जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनी छवि पाइ हैं ।

सुरन चढ़ेंगे सुर नरन चढ़ेंगे हम,

सुकवि ‘रहीम’ हाथ हाथ ही बिकाइ हैं ।

देस में रहेंगे परदेस में रहेंगे,
 काहू भेष में रहेंगे पै रावरे कहाइ हैं।
 बड़ेन सो जान पहिचान, तो 'रहीम' कहा,
 जो पै करतार ही न सुखदेनहार है।
 सीतहर सूरज सों प्रीति कर पंकज ने,
 तऊ कंज-बनन जारत तुषार है।
 उदधि के बीच धस्यो सङ्कर के सीस बस्यो,
 तऊ न कलंक नस्यो, ससि में सदा रहै।
 बड़े रिभवार हैं, चकोर दरबार देख्यो,
 सुधाधर यार ए पै चुगत अंगार है।
 छवि आवन मोहन लाल की।

लाल काछनी कांछे कर मुरली पीत पिछौरी साल की ॥
 वंक तिलक केसर के किये दुति मनो विधु-बाल की।
 विसरत नाहिं सखी मो मन ते चितवनि नयन विसाल की ॥
 नीकी हँसनि अधर सधरनि की, छवि छिनी सुमन गुलाल की।
 जल सौं डारि दियौ पुरइन पर डोलनि मुकता-बाल की ॥
 आप मोल विन मोलनि डोलनि बोलनि मदन गुपाल की।
 यह सरूप निरखै सोइ जाने इस 'रहीम' के हाल की ॥

कमल-दल नैननि की उनमानि।

विसरत नाहिं सखी मो मन ते मन्द-मन्द मुसकानि ॥
 यह दसनन दुति चपला हू ते महा चपल चमकानि।
 वसुधा की बसकरी मधुरता सधापगी बतरानि ॥

रसखान

जीवन-परिचय

जन्म सं० १६१५ देहली में

मृत्यु सं० १६६०

अनन्य कृष्ण-भक्त मुस्लिम कवि रसखान दिल्ली के पठान सरदार थे। ये शाहो खानदान के थे, जैसा कि 'प्रेमवाटिका' में लिखा है—

देखि गदर हित साहिबी दिल्ली नगर मसान ।

छिनहिं बादशाह वंश की ठसक छाँडि रसखान ॥

ये बड़े भारी कृष्ण-भक्त और गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी के अत्यन्त कृपापात्र शिष्य व आरम्भ से ही प्रेमी जीव थे। इनकी भाषा बड़ी ही सरल, सरस और शब्दाडंबर से रहित है। इनके सवैयाँ में प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ प्रतीत होता है। इसीलिए जन-साधारण के प्रेम-सम्बन्धी कवित्त सवैयाँ को ही 'रसखान' कहने लगे। यद्यपि इनकी रचना परिमाण में स्वल्प ही है तथापि कृष्ण-भक्त प्रेमियों के मर्म को स्पर्श करने वाली है। अन्यान्य कृष्ण-भक्त कवियों ने गीत लिखे हैं। परन्तु इन्होंने अपनी कविता के लिए कवित्त-सवैयाँ का आश्रय लिया है। अनुप्रास को सुन्दर लय से युक्त चुस्त और मनोहर भाषा में प्रेम व भक्ति का सजीव-चित्र खींचने में तो रसखान अपने उपमान आप ही हैं।

इनकी दो रचनाएँ अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं—१. सुजान रसखान, २. प्रेमवाटिका। सुजान-रसखान में १२० पद्य सवैया, घनाक्षरी छन्दों में हैं तथा कुछ एक दोहे-सोरठे भी हैं। प्रेमवाटिका में ५२ दोहे हैं।

सरस-सवैये

कहा 'रसखानि' सुखसंपति सुमार कहा,
कहा महा जोगी ह्वै लगाये अङ्ग छार को ।
कहा साधे पंचानल कहा सोये बीच जल,
कहा जीत लीने राज सिंधु आर पार को ॥
जप बार बार तप संजम अपार व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को ।
कीन्हों नहिं प्यार सेयो दरबार, चित—
चाह्यौ न निहारयो जौ पै नन्द के कुमार को ॥
कंचन के मन्दिरनि दीठि ठहराति नाहिं,
सदा दीपमाल लाल-मानिक उजारे सौं ।
और प्रभुताई सब कहाँ लौं बखानौं,
प्रतिहारन की भीर भूप टरत न द्वारे सौं ॥
गङ्गा जी में न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाई वेद—
बीस बेर गाइ ध्यान कीजत सकारे सौं ।
ऐसे ही भये तो कहा कीन्हों 'रसखानि' जो पै,
चित्त दै न कीन्हीं प्रीति पीतपटवारे सौं ॥
सुनिये सबकी कहिए न कछू रहिए इमि या भव-वागर में ।
करिए व्रत नेम सचाई लिए, जिनतैं तरिए भव-सागर में ॥
मिलिए सब सौं दुरभाव बिना, रहिए सतसंग उजागर में ।
'रसखानि' गुविन्दहिं यों भजिए जिमि नागरि को चित गागर में ॥

बैन वही उनको गुन गाइ, औ कान वही उन बन सों सानी ।
 हाथ वही उन गात परै, अरु पाँय वही जु वही अनुजानी ॥
 जान वही उन प्रान के सङ्ग, औ मान वही जु करे मनमानी ।
 त्यों 'रसखानि' वही रसखानि, जु है रसखानि सो है रसखानी ॥
 इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि, नागन के गन गाजत री ।
 मुरली मधुरी धुनि ओठन पे, उत डामर नाम सों बाजत री ॥
 'रसखानि' पितंबर एक कँधा पर एक बधंबर छाजत री ।
 अरी देखहु संगम लै बुड़की, निकसे यह भेख विराजत री ॥
 यह देख धनूरे के पात चबात, औ गात सों धूलि लगावत हैं ।
 चहुँ ओर जटा अँटकी लटकै, सुभ सीस फनी फहरावत हैं ॥
 'रसखानि' जेई चितव चित दै, तिनके दुःख दुन्द भगावत हैं ।
 गज-खाल कपाल की माल बिसाल, सो गाल बजावत आवत हैं ॥
 बैद की औषधि खाइ नहीं, न करै वह संजम री सुन मोसें ।
 तेरोई पानी पियें 'रसखानि', सजीवन जानि लहैं सुख तोसें ॥
 ए री सुधामयी भागीरथी, सब पथ्य कुपथ्य बनें तुहि पोसें ।
 आक धतूरो चबात फिरैं, बिप खात फिरैं शिव तेरे भरोसें ॥
 द्रोपदी औ गनिका गज गीध, अजामिल जो कियो सो न, निहारो ।
 गौतम गेहनी कैसे तरी, प्रह्लाद को कैसे हरयो दुख भारो ॥
 काहे को सोच करे 'रसखानि', कहा करि है रविनन्द विचारो ।
 कौन की संक परी है, जु माखन, चाखनहारो सो राखनहारो ॥
 मानुष हौं तौ वही 'रसखानि', बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
 जो पशु हौं तौ कहा बस मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ॥

पाहन हौं तौ वही गिरि को, जो धरचो कर छत्र पुरन्दर कारन ।
 जो खग हौं तो बसेरो करौं नित, कालिंदी कूल कदंब की डारन ॥
 जो रसना रस ना विलसै, तेहि देहु सदा निज नाम उचारन ।
 जो कर नीकी करै करनी, जुपे कुंज कुटीरन देहु बुहारन ॥
 सिद्धि समृद्धि सबै 'रसखानि', लहौं ब्रज रेणुका अंग सँवारन ।
 खास निवास मिलै जु पै तौ वहाँ, कालिंदी कूल कदंब की डारन ॥
 सेस, सुरेस, दिनेस, गनेस, प्रजेस, धनेस, महेस, मनाओ ।
 कोऊ भवानी भजौ मन की, सब आस सबै विधि जाय पुराओ ॥
 कोऊ रमा भजि लेहु महाधन, कोऊ कहूँ मन बांचित पाओ ।
 पै 'रसखानि' वही मेरो साधन, और त्रिलोक रहौ कि नसाओ ॥
 या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं ।
 आठहुँ सिद्ध नवों निधि को सुख, नंद की गाय चराय विसारौं ॥
 'रसखानि' कवौं इन आंगिन तै, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं ।
 कोटिनहूँ कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं ॥
 आजु गई हुती भोरहिं हौं, रसखानि रई कहि नन्द के भौनहिं ।
 बाको जियौ जुग लाख करोर, जसोमति को सुख जात कह्यो नहीं ।
 तेल लगाइ, लगाइ कै अंजन, भौंह बनाइ, बनाइ डिठौनहिं ॥
 डारि हमेल निहारति आनन, वारति ज्यों चुचकारति छौंनहिं ।
 धूर भरे अति सोभित स्याम-जू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी ।
 खेलत खात फिरै अंगना, पग पैजनियां कटि पीरी कछोटी ।
 वा छवि को रसखानि विलोकत, बारत काम कलानिधि कोटी ।
 काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सौं लै गयो माखन रोटी ॥

अपनो सो ढोटा हम सबही को जानत हैं,
 दोऊ प्रानी सबही के काज नित धावहीं ।
 ते तौ 'रसखानि' अब दूर ते तमासो देखैं,
 तरनि-तनूजा के निकट नहि आवहीं ॥

आये दिन बात अनहितुन सौं कहौ कहा,
 हितु जेऊ आये तेऊ लोचन दुरावहीं ।
 कहा कहौ आली खाली देत सब ताली,
 हाय मेरे बनमाली कौ न कीली ते छुड़ावहीं ॥

सेस गनेस महेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं ।
 जाहि अनादि अनन्त अखंड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं ॥
 नारद सै सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पर पार न पावैं ।
 ताहि अहीर की छोहरियाँ, छल्लिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥
 ब्रह्म मैं दूँ ढ्यौ पुरानन गानन, वेद रि वा सुनी चौगुने चायन ।
 देख्यो सुन्यो न कहूँ कबहूँ, वह कैसे सरूप औ' कैसे सुभायन ॥
 टेरत हेरत हारि परचो, रसखानि बतायो न लोग लुगायन ।
 देख्यो दुरो वह कुञ्ज कुटीर में, बैठो पलोटत राधिका पायन ॥

ग्वालन संग जैबो औ चरैवो गाय उनही संग,
 हेरि तान गैबो सोचि नैन फरकत हैं ।
 ह्यां के गजमुक्तामाल वारों गुंजामालनि पै,
 कुञ्ज सुधि आये हाय प्रान धरकत हैं ।
 गोबर को गारो सु तो मोहिं लगै प्यारो,
 नाहि भावै ये महल जे जटित मरकत हैं ।

मन्दर ते ऊँचे कहा मन्दिर हैं द्वारिका के,
 ब्रज के खिरक मेरे हिये खरकत हैं ॥

गोरज विराजै भाल लहलही बनमाल,
 आगे गैया पाछे ग्वाल गावै मृदु तान री ।
 जैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर, तैसी,
 बंक चितवनि मंद मंद मुसकान री ॥

कदम बिटप के निकट तटिनी के तट,
 अटा चढ़ि देखे पीतपट पहरानि री ।
 रस बरसावै तन तपन बुझावै, नैन,
 प्राननि रिभावै वह आवै 'रसखानि' री ॥

आयो हुतो नियरे 'रसखानि', कहा कहूँ तू न गई वह ठैयाँ ।
 या ब्रज की वनिता जिहि देखिकै, वारहिं प्राननि लेहिं बलैयाँ ॥
 कोऊ न काहू की कानि करै, कल्लु चेटक सो जु करयो जदुरैया ।
 गाइगो तान जमाइगो नेह, रिभाइगो प्रान चराइगो गैया ॥
 कानन दै अँगुरी रहिहौं, जबहीं मुरली धुनि मंद बजैहै ।
 सोहनी तानन सों 'रसखानि', अटा चढ़ि गोधन गैहै तो गैहै ॥
 टेरि कहौं सिगरे ब्रजलोगनि, काल्हि कोऊ कितनो समुझैहै ।
 माई री वा मुख की मुसकान, सम्हारि न जैहे न जैहै न जैहै ॥
 मोरपखा सिर ऊपर राखि हौं, गुञ्ज की माल गले पहिरौंगी ।
 ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी, बन गावत गोधन संग फिरौंगी ॥
 भावतो वोहि मेरो रसखानि सों, तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी ।
 पै मुरली मुरलीधर की, अधरान धरी अधरा न धरौंगी ।

आजु अली इक गोपलली, भई बावरी नेकु न अङ्ग संभारै ।
 मात अघात न देवन पूजत, सासु सयानी सयानी पुकारै ॥
 यों 'रसखानि' धिर-यो सिगरो ब्रज, आन को आन उपाय विचारै ।
 कोऊ न कान्हर के कर तें, वह बैरिन बाँसुरिया गहि जारै ॥

जल की घट न भरै, मग की न पग धरै
 घर की न कल्लु करै, बैठी भरै सांसु री ।
 एकै सुनि लोट गरै, एकै लोटपोट भइ,
 एकनि के दृगनि निकसि आए आंसुरी ॥
 कहै 'रसखानि' सों सबै ब्रजवनिता विधि,
 अधिक कहाये हाय हुई कुल हांसु री ।
 करिये उपाय बांस डारिये कटाय,
 नाहि उपजैगी बांस नाहि वाजै फेरि बांसुरी ॥

कौन ठगौरी करी हरि आजु, बजाइ के बांसुरिया रस भीनी ।
 तान सुनी जिनहीं तिनही, तबहीं तिन लाज बिदा करि दीनी ॥
 घूमै घरी घरी नन्द के द्वार, नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी ।
 या ब्रजमंडल में 'रसखानि' सु कौन भट्ट जो लट्ट नहि कीनी ॥

दूध दुधो सीरो पर-यो तातो न जमायो बीर,
 जामन दयो सो धरो धरोई खटाइगो ।
 आन हाथ आन पांय सबही के तबहीं तें,
 जबहीं ते 'रसखानि' ताननि सुनाइगो ॥
 ज्यों ही नर त्यों ही नारी तैसोई तरुन बारी,
 कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइगो ।
 जानिये न आली यह छोहरा जसोमति को,
 बांसरी बजाइगो कि विष बगराइगो ॥

केशव

Library Sri Pratap College
Srinagar

जीवन-परिचय

जन्म सं० १६१२ ।

मृत्यु सं० १६७३ ।

महाकवि केशव प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० काशीनाथ के पुत्र थे और ओरछा नरेश महाराज रामसिंह के आश्रय में रहते थे । ये काव्य में अलंकार का स्थान मुख्य मानने वाले चमत्कारवादी कवि थे, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है:—

जदपि सुजाति सुलच्छिनी, सुवरन सरस सुवृत्त ।

भूषण विनु न विराजई, कविता, बनिता, मित्त ॥

केशव कवि तथा आचार्य भी थे । उन्होंने संस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर अपने पांडित्य व रचना-कौशल का अच्छा परिचय दिया है । इनके संवादों में पात्रों के अनुकूल क्रोध, उत्साह आदि की व्यंजना भी बड़ी प्रभावपूर्ण और हृदयहारिणी हुई है । वाक्-पटुता और राजनीतिक दावपेंच का आभास भी प्रभावोत्पादक है । रावण-अङ्गद-संवाद, लवकुश-संवाद तथा युद्ध-वर्णन इनके एक दृष्टि से तो तुलसी से भी बढ़कर हैं । यद्यपि इनकी अनेक कविताएँ अन्य कवियों की भाँति सुनते ही तत्काल समझ में नहीं आतीं, उसके लिए कुछ विचार की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु जितना ही अधिक विचारिए उतना ही मिठास भी बढ़ता जाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं । इनकी रामचन्द्रिका एक सुन्दर प्रबन्ध-काव्य है, जिसमें विभिन्न छन्दों में रामकथा कही गई है । जन-सामान्य में इसका प्रचार भले ही 'मानस' के समान नहीं हो पाया तथापि विद्वत्ता व पांडित्य की दृष्टि से इसका पर्याप्त आदर हुआ है । इनकी ये रचनाएँ प्रसिद्ध हैं:—

(१) रामचन्द्रिका (२) कविप्रिया (३) रसिकप्रिया (४) विज्ञान-गीता (५) वीरसिंहदेव-चरित (६) जहाँगीर-जसचन्द्रिका आदि ।

श्रीरामचन्द्रिका : सत्रहवाँ प्रकाश

अङ्गद लै वा मुकुट को, परे राम के पाइ ।

राम विभीषण के शिरसि, भूषित कियो बनाइ ॥

दिशि दक्षिण अङ्गद पूर्व नील, पुनि हनुमंत पच्छिम शत्रुशील ।

दिशि उत्तर लक्ष्मण-सहित राम, सुग्रीव मध्य कीन्हें विराम ॥

सँग लेकर युत्थप-बल-बिलास, पुर फिरत विभीषण आसपास ।

निसि वासर सब को लेत सोधु, यहि भाँति भयो लंका निरोधु ॥

जब रावण सुनि लंका निरोधु, तब उपजो तन मन परम क्रोधु ।

राख्यो प्रहस्त हठि पूर्व पौरि, दक्षिणहि महोदर गयो दौरि ॥

भो इन्द्रजीत पच्छिम दुवार, है उत्तर रावण-बल उदार ।

किय बिरूपाक्ष थित मध्यदेश, कर नरान्तक चहुँधा प्रवेश ॥

अति द्वार द्वार मँह युद्ध भये, बहु ऋक्ष कँगूरिन लागि गये ।

तब स्वर्ण-लंक महँ शोभ भई, जनु अग्नि ज्वाल वहँ धूममई ॥

मरकत मणि से शोभिजै, सबै कँगूरा चारु ।

आय गयो जनु घात को, पातक को परिवारु ॥

तब निकलो रावण-पुत सूरु, जेइ रण जीत्यो हरि-बल पूरु ।

तब-बल माया-तम उपजायो, कपि-दल के मन संभ्रम छायो ॥

काहु न देखि परै वह योधा, यद्यपि हैं सिगरे बुधि-बोधा ।

सायक सो अहिनायक साँध्यो, सोदर स्यों रघुनायक बाँध्यो ॥

रामहिं बाँधि गयो जब लंका, रावण की सिगरी गई शंका ।
 देखि बँधे तब सोदर दोऊ, यूथप यूथ नसे सब कोऊ ॥
 इन्द्रजीत तेइ लै उर लायो, आजु काम सब मो मन भायो ।
 कै विमान अधिरूढ़ित धायो, जानकीहि रघुनाथ दिखायो ॥
 राजपुत्र युत - नागिनि देख्यौ, भूमि-पुत्रि तरु चन्दन लेख्यौ ।
 पन्नगारि - प्रभु पन्नगसाई, काल-चाल कछु जानि न जाई ॥

काल सर्प के कवल ते, छोरत जिनको नाम ।

बँधे ते ब्राह्मण-वचन वश, माया सर्पहिं राम ॥

पन्नगारि तबहीं तहँ आये, ब्याल जाल सब मारि भगाये ।
 लङ्कमाँझ तबहीं गई सीता, सुभ्र देह अवलोकि सुगीता ॥

गरुडः—

श्री राम नारायण लोककर्ता, ब्रह्मादि रुद्रादिक दुःख हर्ता ।
 सीतेश मोको कछु देहु शिखा, नान्ही बड़ी ईश जू होइ इच्छा ॥

रामः—

कीबो हुतो काज सबै सु कीन्हों, आये इतै मो कह सुख दीन्हों ।
 पाँ लागि बैकुण्ठ-प्रभा बिहारी, स्वर्लोक गो तत्क्षण विष्णुधारी ॥
 धूम्राक्ष आया जनु दंडधारी, ताको हनूमंत भयो प्रहारी ।
 जिते अकंपादि बलिष्ठ भारे, संग्राम में अङ्गद वीर मारे ॥
 अकंप धूम्राक्षहिं जानि जूझ्यो, महोदरै रावण मंत्र बूझ्यो ।
 सदा हमारे तुम मन्त्रवादी, रहे कहा हूँ अति ही विषादी ॥
 कहै जो कोऊ हितबन्त बानी, कहौ सो तासों अति दुःखदानी ।
 गनौ न दाँवै बहुधा कुदाँवै, सुधी तबै साधत मौन भावै ॥

कह्यो शुक्राचार्य सु हों कहों जू, सदा तुम्हारे हित संग्रहों जू ।
नृपाल भू में विधि चारि जानौ, सुनो महाराज सबै बखानौ ॥
यहै लोक एकै सदा साधि जानै, बली वेनु ज्यों आपुही ईस मानै ।
करै साधना एक पलोक ही को, हरिश्चन्द्र जैसे गये दै मही को ॥
दुहुँ लोक को एक साथै सयानै, विदेहीन ज्यों वेद वाणी बखानै ।
नठै लोक दोऊ हठी एक ऐसे, त्रिशंकै हँसै ज्यों भलेऊ अनैसे ॥

चहुँ राज को मैं कह्यौ, तुमसों राज चरित्र ।
रुचै सु कीजै चित्त में, चितहु मित्र अमित्र ॥
चारि भाँति मन्त्री कहें, चारि भाँति के मन्त्र ।
मोहि सुनायो शुक्र जू, सोधि सोधि सब तन्त्र ॥

एक राज के काज हतैं निज कारज काजे,
जैसे सुरथि निकारि सबै मन्त्री सुख साजे ।

एक राज के काज आपनै काज बिगारत,
जैसे लोचन हानि सही कवि बलहि निवारत ।

इक प्रभु समेत अपनो भलो करत दासरथि दूत ज्यों,

इक अपनो अरु प्रभु को बुरो, करत रावरो पूत ज्यों ।

मन्त्र जु चारि प्रकार के, मन्त्रिन के जे प्रमान ।

विष से दाड़िम बीज से, गुड़ से नीव समान ॥

राज-नीति मत तत्व समझिये, देस-हाल गुनि युद्धि अरुझिये ।

मन्त्री मित्र अरि को गुण गहिये, लोक सोक अपलोक न बहिये ॥

चारि भाँति नृप जो तुम कहियो, चारि मंत्रे मत मैं मन गहियो ।

राम मारि सुर एक न बचि हैं, इन्द्रलोक बसोबासहि रचि हैं ॥

उठि कै प्रहस्त सजि सैन चले, बहु भाँति जाय कपि-पुंज दले ।
 तब दौरि नील उठि मुष्टि हन्यो, असुहीन गिरयो भुव मुंढ सन्यो ॥
 महाबली जूझत ही प्रहस्त को, चल्यो तहीं रावण मीड़ि हस्त को ।
 अनेक भेरी बहु दुंदुभी बजै, गयंद क्रोधान्ध जहाँ तहाँ गजै ॥
 सनीर जीमूत-निकाश सोभहीं, विलोकि जाको सुर-सिद्ध छोभहीं ।
 प्रचंड नैऋत्य-समेत देखिये, सप्रेत मानो महाकाल लेखिये ॥
 कोदंड मंडित महारथवंत जो है, सिंहध्वजा समर पंडित वृन्द मोहै ।
 जोधा बली प्रबल काल कराल नेता, सो मेघनाद सुरनायक युद्ध जेता ॥
 जो व्याघ्र-वेष रथ व्याघ्रहि केतुधारी, आरक्तलोचन कुबेर विपत्तिकारी
 लीन्हें त्रिसूल सुरसूल समूल मानो, श्रीराघवेन्द्र अतिकाय वहै सु जानो
 जो कांचनीय रथ शृङ्गमयूरमाली, जाकी उदरा उर षण्मुखशक्तिसाली
 स्वर्धाम हर कीरति कै न जानी, सोई महोदर वृकोदर बंधुमानी ॥

जाके रथाग्र पर सर्पध्वजा विराजै ।

श्री सूर्य मंडल विडंबन ज्योति साजै ॥

आखंडलीय बपु जो तनत्राण धारी ।

देवांतकै सु सुरलोक विपत्तिकारी ॥

जो हंसकेतु भुजदंड निषंगधारी, संग्राम-सिंधु बहुधा अवगाहकारी ।

लीन्हें छँडाय जेहिदेव अदेववामा, सोई खरात्मजबली मकराक्षनामा

लगी स्यंदनै बाजि राजि विराजै ।

जिन्हें देखि कै पौन को बेग लाजै ॥

भले स्वर्ण के किकनी यूथ बाजै ।

मिले दामनी सों मनो मेघ गाजै ॥

पताका बन्यो शुभ्र शार्दूल सोभै ।

सुरेन्द्रादि रुद्रादि को चित्त छोभै ॥

लसै छत्रमाला हँसै सोमभा को ।

रमानाथ जानो दसग्रीव ताको ॥

पुरद्वार छाँड्यो सबै आपु आयो, मनो द्वादशादित्य को राहु धायो ।

गिरि-ग्राम लै लै हरि-ग्राम मारै, मनो पद्मनी पद्म दंती विहारै ॥

देखि विभीषण को रण रावण शक्ति गही कर रोष रई है ।

छूटत ही हनूमंत सो बीचहिं पूछ लपेटि के डारि दई है ॥

दूसरि ब्रह्म की शक्ति अमोघ चलावत ही हाइ हाइ भई है ।

राख्यो भले शरणागत लक्ष्मण फूलि कै फूल सी ओड़ि लई है ॥

जोर ही लक्ष्मणै लेन लाग्यो जहीं ।

मुष्टि छाती हनूमंत मारयो तहीं ॥

असुही प्राण कों नाश सो ह्वै गयो ।

दंड द्वै तीनि में चेत ताको भयो ॥

आयो डर प्राणन, लै धनु बाणन, कपि दल दियो भगाय ।

चढ़ि हनूमंत पर, रामचन्द्र तब रावण रोक्यो जाय ॥

धरि एक बाण तब, सूत छत्र ध्वज, काटे मुकुट बनाय ।

लागे दूजो सर, छूटि गयो बर, लंक गयो अकुलाय ॥

यद्यपि है अति निर्गुणताई, मानुष देह धरे रघुराई ।

लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो, नैनन ते न रह्यो जल रोक्यो ॥

बारक लक्ष्मण मोहिं विलोको, मोकहँ प्राण चले तजि रोको ।

हौं सुमरो गुण कौतुक तेरे, सोदर पुत्र सहायक मेरे ॥

लोचन बान तुही धनु मेरो, तू बल विक्रम बारक हेरो ।
 तू विनु हौं पल प्राण न राखौं, सत्य कहौं कछु भूठ न भाखौं ॥
 मोहिं रही इतनी मन शंका, देन न पाई विभीषण लंका ।
 बोलि उठौ प्रभु को पन पारौ, नातरु होत है मो मुख कारो ॥
 मैं विनऊँ रघुनायक करौ अब, देव तजो परदेवन को सब ।
 औषधि लै निसि में फिर आवहि, केसव को सब साथ जिवावहि ॥
 सोदर सूर को देसत ही मुख, रावण के सिंगरे पुरवै सुख ।
 बोल सुने हनुमंत करयो प्रनु, कूदि गयो जहँ औषधि को वनु ॥

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौं अष्ट वसु ।

रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु ॥

बलित अबेर कुबेर बलहिं गहि देऊँ इन्द्र अब ।

विद्याधरन अविद्य करौं विन सिद्धि सिद्ध सब ॥

निजु होई दासी दितिकी अदिति अनिल अनल मिट जाय जल ।

सुनि सूरज ! सूरज उवत ही करौ असुर संसार बल ॥

हन्यौं विघ्नकारी बली वीर बामैं, गयो शीघ्रगामी गये एक यामैं ।

चल्यौ लै सबै पर्वत कै प्रणामैं, न जान्यो विशल्यौषधी कौन तामैं ॥

तसैं औषधी चारु भो व्योमचारी, कहें देखियो देव देवाधिकारी ।

पुरी भौम की सी लिए शीस राजै, महामंगलार्थी हनूमंत गाजै ॥

लगी शक्ति रामानुजै राम साथी, जड़ै ह्वै गये ज्यों गिरैं हेम हाथी ।

जिन्हें ज्याइवे को सुनो प्रेमपाली, चल्यो ज्वालमालीहि लै कीर्तिमाली ॥

किधौँ प्रात ही काल जी में विचार्यो ।

चल्यो आशु ले अंशुमाली संहार्यो ॥

किधौँ जात ज्वालामुखी जोर कीन्हें ।

महामृत्यु जामें मिटे होम कीन्हें ॥

बिना पत्र है यत्र पलाश फूले, रमैं कोकिलाली भ्रमें भौर भूले ।

सदानन्द रामैं महानन्द को लै, हनूमन्त आये बसंतै मनो लै ॥

ठाड़े भये लक्ष्मण मूरि छिए, दूनी सुभ सोभ शरीर लिए ।

कोदंड लिए यह बात ररै, लंकेश न जीवित जाइ घरै ॥





जीवन-परिचय

जन्म सं० १६७० तिकवांपुर में ।

मृत्यु सं० १७७२ ।

वीर-रस के प्रसिद्ध महाकवि भूषण प्रसिद्ध कवि मतिराम व चिन्तामणि त्रिपाठी के भाई थे । चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें 'कविभूषण' की उपाधि दी थी । तभी से यह भूषण के नाम ही से प्रसिद्ध हो गए । इनका वास्तविक नाम अब किसी को ज्ञात नहीं । पहले ये अनेक राजाओं के यहाँ रहे, पर अन्त में अपनी विचार-धारा के अनुकूल छत्रपति महाराजा शिवाजी के यहाँ जा पहुँचे । पन्ना के महाराज छत्रसाल भी इनका बहुत सम्मान करते थे । यहाँ तक कि एक बार उन्होंने इनकी पालकी में अपना कन्धा लगाया था । इन्हें एक-एक कविता पर महाराज शिवाजी से लाखों रुपये, कई गाँव तथा हाथी प्राप्त हुए थे ।

अन्यान्य रीतिकालीन कवियों ने या तो शृङ्गारिक वर्णन किये हैं अथवा अपने आश्रय-दाताओं की झूठी प्रशंसा में पृष्ठों-के-पृष्ठ रँग डाले हैं । किन्तु भूषण ने न तो जनता की कुत्सित वृत्तियों को जागृत करने वाली शृङ्गारिक रचना ही लिखी और न किसी राजा की चादु-कारितापूर्ण झूठी प्रशंसा ही की । इन्होंने अत्याचार का दमन करने वाले, देश की स्वतन्त्रता के सच्चे पुजारी महापराक्रमी महापुरुषों की सच्ची धीरता का बखान कर, कवि-कर्तव्य का पूर्णरूपेण पालन किया है । यही कारण है कि अन्यान्य कवियों द्वारा अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में लिखी हुई किसी रचना या कविता का आज कोई नाम भी नहीं लेता । किन्तु भूषण के कवित्तों को जनता बड़े उत्साह से पढ़ती है । इनके 'शिवराजभूषण', 'शिवाबावनी' और 'छत्रसाल-दशक' ये तीन ग्रन्थ हैं

शिवा-प्रताप

देवत ऊँचाई उघरत पाग, सूधी राह,
चौसहू में चढ़ें ते जो साहस निकेत हैं ।
सिवाजी हुकुम तेरो पाय पैदलन सल-
हेरी, परनालो ते वै जीते जनु खेत हैं ॥
सावन भादों की भारी कुहू की अँधारी चढ़ि,
दुग्ग पर जात मावलीदल सचेत हैं ।
'भूषन' भनत ताकी बात मैं बिचारी तेरे,
परताप-रवि की उज्यारी गढ़ लेत हैं ॥
कामिनी कन्त सों जामिनि चन् , दामिनी पावस-मेघ-घटा सों ।
कीरति दान सों, सूरति ज्ञान सों, प्रो ति बड़ी सनमान महा सों ॥
'भूषन' भूषन सों तरुनी, नलिनी नव पूषण देव-प्रभा सों ।
जाहिर चारिहु ओर जहान लसै हिंदुवान खुमान सिवा सों ॥

दारुन दुगुन दुरजोधन ते अवरंग,
'भूषन' भनत जग राख्यो छल मढ़ि कै ।
धरम धरम, बल भीम, पैज अरजुन,
नकुल अकिल, सहदेव पेज चढ़ि कै ॥
साहि के सिवाजी गाजी कयों दिली माहि चण्ड
पाण्डवन हू ते पुरुषारथ सुबढ़ि कै ।

सूने लाख-भौन ते कढ़े वै पाँच राति मैं जु,
 द्यौस लाख चौकी ते अकेले आयो कढ़ि कै ॥
 पूरब के उत्तर के, प्रबल पछाँह हू के,
 सब पातसाहन के गढ़ कोट हरते ।
 'भूषन' कहैं यों अवरंग सों वजीर जीति-
 लीबे को पुरतगाल सागर उतरते ॥
 सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
 हजरत हम मरिबे को नहि डरते ।
 चाकर हैं उजर कियो न जाय नेक पै,
 कछू दिन उबरते तो घने काज करते ॥
 कसत मैं बार बार बैसोई बलन्द होत,
 बैसोई सरस रूप समर भरत हैं ।
 'भूषन' भनत महाराज सिवराजमनि,
 सघन सदाई जस फूलनि धरत है ॥
 बरछी कृपान गोली तीर केते मान जोरा—
 वर गोला बान तिनहू को निदरत है ।
 तेरो करबाल भयो जगत को ढाल अब,
 सोई हाल म्लेच्छन के काल को करत है ॥
 अंभा सी दिन को भई संभा सी सकल दिसि,
 गगन लगन रही गरद छ्वाय है ।
 चील्ह, गीध, बायस समूह घोर रोर करैं,
 ठौर ठौर चारों ओर तम मँडराय है ॥

'भूषण' अंदेस देस-देस के नरेसगन,
 आपुस में कहत यों गरब गँवाय है ।
 बड़ो बड़वा को, जितवार चहुँधा को दल,
 सरजा सिवा को, जानियत इत आय है ॥
 साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि,
 सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है ।
 'भूषण' भनत नाद बिहद नगारन के,
 नदी-नद मद गैबरन के रलत है ॥
 ऐल फैल खेल भैल खलक में गैल-गैल,
 गजन की ठेलपेल सैल उसलत है ।
 तारा सो तरनि धूरीधारा में लगत जिमि,
 थारा पर पारा पारावार यों हलत है ॥
 ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
 ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं ।
 कन्द मूल भोग करैं, कन्द मूल भोग करैं,
 बीन बेर खातीं ते वै बीन बेर खाती हैं ॥
 भूषण सिथिल अंग, भूखन सिथिल अंग,
 बिजन डुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं ।
 'भूषण' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
 नगन जड़ातीं ते वै नंगन जड़ाती हैं ॥
 उतरि पलंग ते न दियो है धरा पै पग,
 सोई निस-दिन सगबग चली जाती हैं

अति अकुलार्ती मुरझाती न छिपाती गात,
 बात न सोहाती-बोले अति अनखाती हैं ॥
 'भूषण' भनत बली साहि के सपूत सिवा,
 तेरी धाक सुने अरिनारी बिललाती हैं ।
 जोन्ह में जाती वे धूपे चली जाती पुनि,
 कोऊ करें घाती कोऊ रोती पीटि छाती हैं ॥
 सबन के ऊपर ही ठाढो रहिबे के जोग,
 ताहि खरो कियो पञ्ज-जारिन के नियरे ।
 जानि गैर मिसिल गुसैल गुसा वारि उर,
 कीन्हों न सलाम, न वचन बोले सियरे ॥
 'भूषण' भनत महावीर बलकन लागो,
 सारी पातसाही के उड़ाये गये जियरे ।
 तनक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
 स्याह मुख नौरङ्ग, सिपाह-मुख पियरे ॥
 केतकी भो राना और बेला सब राजा भये,
 ठौर ठौर लेत रस नित्य यह काज है ।
 सिगरे अमीर भये कुन्द मरकन्द भरे,
 भृंग सो भ्रमत लखि फूल के समाज है ॥
 'भूषण' भनत शिवराज देश देशन की,
 राखि है बटोरि एक दच्छिन में लाज है ।
 तजत मिलिन्द जैसे तैसे तजि दूर भाज्यो,
 अलि अवरङ्गजेव, चंपा शिवराज है ॥

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सुअम्भ पर,
 रावन सदम्भ पर रघुकुल-राज है ।
 पौन वारिवाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
 ज्यों सहस्र बाहु पर राम द्विजराज है ॥
 दावा द्रुम-दण्ड पर, चीता मृग-फुण्ड पर,
 'भूषण' वितुण्ड पर जैसे मृगराज है ।
 तेज तम-अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
 यों मलेच्छ-वंस पर सेर सिवराज है ॥
 कलिजुग जलधि अपार, उद्ध अधरम्म उम्मिमय ।
 लच्छनिलच्छ मलिच्छ कच्छ अरु मच्छ मगरचय ॥
 नृपति नदी नद-वृन्द होत जाको मिलि नीरस ।
 भनि भूषण सब भुम्मि घेरि किन्निय सुअप्प बस ॥
 हिन्दुवान पुन्य गाहक-बनिक, तासु निवाहक साहिसुव ।
 बर बादवान किरवान धरि, जस जहाज सिवराज तुव ॥
 सिंह थरि जाने बिन जावली जंगल भठी,
 हठी-गज एदिल पठाय करि भटक्यौ ।
 'भूषण' भनत देखि भभरि भगाने सब,
 हिम्मति हिए में धरि काहुवे न हटक्यौ ॥
 साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
 मदगल अफजलै पंजावल पटक्यौ ।
 ता बिगिर ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ,
 आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यौ ॥

कवि कहैं करन, करन-जीत कमनैत,
 अरनि के उर माहिं कीन्हो इमि छेव है ।
 कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो,
 और धराधरन को मेटो अहमेव है ॥
 'भूषन' भनत महाराज सिवराज तेरो,
 राज-काज देखि कोऊ पावत न भेव है ।
 कहरि यदिल, मौज-लहरी कुतुब कहै,
 बहरी निजाम जितैया कहैं देव है ॥
 छूटत कमान और गोली तीर बानन के,
 होत कठिनाई मुरचानहू की ओट में ।
 ताहि समै सिवराज हाँक मारि हल्ला कियो,
 दावा बाँधि परा हल्ला वीरवर जोट में ॥
 'भूषन' भनत तेरी हिम्मत कहौ लौ कहौ,
 किम्मत लगि है जाकी भट भोट में ।
 ताव दै दै मूँछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
 अरि मुख घाव दै दै कूदि परे कोट में ॥
 कोप करि चढ्यो महाराज सिवराज वीर,
 धौंसा की धुकार ते पहार दरक्त हैं ।
 गिरे कुंभि मतवारे श्रोनित फुहारे छूटे,
 कड़ाकड़ छिति नाल लाखों करक्त हैं ॥
 मारे रन जोम के जवान खुरासान केते,
 काटि काटि दाटि दाबें छाती दरक्त हैं ।

रन-भूमि लेटे वे चपेटे पठनेटे परे,
 रुधिर लपेटे मुगलेटे फरकत हैं ॥
 दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
 उग्ग पर उग्ग नाचे रुंड मुंड फरके ।
 'भूषण' भनत बाजे जीत के नगारे भारे,
 सारे करनाटी भूप सिंहल लौं सरके ॥
 मारे सुनि सुभट पनारेवारे उद्धट,
 तारे लागे फिरन सितारे गढ़धर के ।
 बीजापुर बीरन के, गोलकुण्डा धीरन के,
 दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके ॥
 जिन फन फुतकार उड़त पहार भार,
 कूरम कठिन जनु कमल बिदलि गो ।
 विष ज्वाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन,
 जिनते चिकारी मद दिग्गज उगलि गो ॥
 कीन्हों जिन पान पलपान सो जहान सब,
 भूषण भनत सिंधुजल थल हलि गो ।
 खग-खगराज महाराज सिवराज तेरो,
 अखिल मुगल-दल-नाग को निगलि गो ॥
 गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
 दावा नाग-जूह पर सिंह सिरताज को ।
 दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
 पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को ॥

'भूषन' अखंड नव खंड महि-मंडल में,
 तम पर दावा रवि-किरन-समाज को ।
 पूरब पछाँह देश दच्छिन ते उत्तर लौं;
 जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को ॥
 वेद राखे विदित, पुरान राखे सार युत,
 राम नाम राख्यो आनि रसना सुघर में ।
 हिंदुन की चोटी, रोटि राखी है सिपाहन की,
 काँधे में जनेऊ राख्यो माल राखी गर में ॥
 मीड़ि राखे मुगल, मरोरि राखे पातसाह,
 बैरी पीस राखे बरदान राख्यो कर में ।
 राजन की हह राखी तेग बल सिवराज,
 देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में ॥
 गढ़न गँजाय गढ़ धरन सजाय करि,
 छाँड़े केते धरम दुआर दै भिखारों से ।
 साहि के सपूत पूत बीर सिवराज सिंह,
 केते गढ़धारी किये बिन बनचारी से ॥
 'भूषन' बखानै केते दीन्हें बन्दीखाने सेख,
 सैयद हजारी गहे रैयत बजारी से ।
 महतो से मुगल, महाजन से महाराज,
 डांडि लीन्हें पकरि पठान पटवारी से ॥
 आपस की फूट ही ते सारे हिन्दुवान दूटे,
 दूख्यो कुल रावन अनीति अति करते ।

पैठिगो पताल वली बज्रधर इरषातें,
 दूख्यो हिरनाच्छ अभिमान चित धरते ॥
 दूख्यो सिसुपाल बासुदेव जू सों बैर करि,
 दूख्यो है महिष दैत्य अधम विचरते ।
 राम कर छुवन ते दूख्यो ज्यों महेसचाप,
 दूटी पातसाही सिवराज संग लरते ॥

*

*

*

छत्रसाल का शौर्य

भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजंगिनी सी,
 खोदि खोदि खाती दीह दारुण दलन के ।
 बखतर पाखरनि बीच धँसि जाती मीन,
 पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के ॥
 रैथा राय चम्पति को छत्रसाल महाराज,
 भूषन सकत को बखान यों बलन के ।
 पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने वीर,
 तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के ॥
 हैबर हरट्ट साजि गैबर गरट्ट सम,
 पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की ।
 'भूषन' भनत राय चम्पति के छत्रसाल,
 रोप्यो रन ख्याल है कै ढाल हिन्दुवाने की ॥
 कैयक हजार एक बार बैरि मारि डारे,
 रंजक दगनि मानौं अगिनि रिसाने की ।
 सैद अफगान सेन सगर सतन लागी,
 कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की ॥

चाक चक चमू के अचाकचक चहुँ ओर,
 चाक सी फिरती धाक चम्पति के लाल की ।
 भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्हीं,
 काहू उमराव ना करेरी करवाल की ॥
 सुनि सुनि रीति बिरदैत के बड़प्पन की,
 थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की ।
 जंग जीति लेवा ते वै ह्वै कै दाम देवा भूप,
 सेवा लागे करन महेवा महिपाल की ॥
 देस दहवट्टि आयो आगरे दिली के मेंडे,
 बरगी बहरि मानौ दल जिमि देवा को ।
 'भूषन' भनत छत्रसाल छितिपाल मन तांके,
 ते कियो बिहाल जंग जीति लेवा को ॥
 खंड खंड सोर यों अखंड महि मंडल में,
 मंडो, ते बुंदेलखंड मंडल महेवा को ।
 दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु,
 ज्यों सहस्रबाहु ने प्रवाह रोक्यो रेवा को ॥
 राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो,
 गाजत गयन्द दिग्गजन हिय साल को ।
 जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
 ताप जति दुज्जन करत बहु ख्याल को ॥
 साज सजि गज तुरी, पैदर कतार दीन्हें,
 'भूषन' भनत ऐसे दीन प्रतिपाल को ।
 और राजा राव एक मन मैं न ल्याऊँ अब,
 साहू को सराहौँ कै सराहौँ छत्रसाल को ॥

बिहारी

जीवन-परिचय

जन्म सं० १६६० बसुआ गोविन्दपुर में, मृत्यु सं० १७२० मथुरा में ।

सर्वोत्कृष्ट शृंगारी कवि बिहारीलाल चौबे ब्राह्मण थे । इनकी बाल्यावस्था बुन्देलखण्ड में बीती । युवावस्था में कुछ वर्षों तक ये जयपुर के राजा मिर्जा जयशाह के आश्रय में रहते रहे । तदनन्तर अपनी ससुराल मथुरा में जा बसे । आचार्य केशव इनके कविता-गुरु थे । इनकी रचना परिमाण में अत्यन्त ही स्वल्प—सात सौ दोहे-मात्र हैं । फिर भी जितनी अधिक ख्याति इनकी हुई है उतनी अन्य किसी शृंगारी कवि की नहीं । इनकी रचना की महत्ता इसी से स्पष्ट है कि बिहारी सतसई की अब तक बीसियों टीकाएँ, आलोचनाएँ, प्रत्यालोचनाएँ आदि हो चुकी हैं, तुलसी को छोड़कर अन्य किसी भी कवि पर इतना अधिक साहित्य निर्मित नहीं हुआ । एक दृष्टि से यह तुलसी से भी बढ़ जाते हैं । तुलसी के किसी भी ग्रन्थ का अभी तक संस्कृत और उर्दू में पद्यानुवाद नहीं हुआ किन्तु बिहारी-सतसई का संस्कृत में “शृंगारसप्तशती” के नाम से अनुवाद हो चुका है । अतः यह मानना ही होगा कि इन्होंने जो कुछ लिखा है वह अत्यन्त चमत्कारपूर्ण, सरस और मार्मिक है ।

शृंगार के अतिरिक्त नीति, भक्ति आदि अन्यान्य विषयों पर भी इन्होंने बहुत सुन्दर लिखा है । वाग्वैदग्ध्य तो इनका अपना

विशेष गुण है। मुक्तक रचना प्रबन्ध-काव्य की अपेक्षा क्लिष्ट मानी गई है। मुक्तक काव्य के लिए आवश्यक सभी गुण बिहारी की रचना में चरमोत्कर्ष पर पहुँचे हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि 'किसी कवि का यश उसकी रचनाओं के परिणाम से नहीं प्रत्युत गुणों के हिसाब से होता है'। बिहारी की रचना इस तथ्य का ज्वलन्त और सजीव प्रमाण है।

बिहारी-विहार

मेरी भव-बाधा हरो, राधा नागरि सोइ ।
जा तन की भाँई परै, स्यामु हरित-दुति होइ ॥ १ ॥
नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारी ।
तज्यौ मनौ तारन-बिरदु, बारक बारनु तारि ॥ २ ॥
जम-करि-मुँह-तरहरि परचो, इहि धर हरि चित लाउ ।
विषय-तृषा परिहरि अजौ, नरहरि के गुन गाउ ॥ ३ ॥
जगतु जनायौ जिहि सकलु, सो हरि जान्यौ नाहिं ।
ज्यौँ आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाहिं ॥ ४ ॥
दीरघ सांस न लेहि दुख, सुख साईहिं न भूलि ।
दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि ॥ ५ ॥
बंधु भए का दीन के, को तारचौ, रघुराई ।
तूठे तूठे फिरत हौ, भूठे बिरद कहाइ ॥ ६ ॥
कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहारै ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग-नाइक, जग-बाइ ॥ ७ ॥
दियौ, सु सीस चढ़ाइ लै, आछी भांति अएरि ।
जापै सुख चाहतु लियौ, ताके दुखहिं न फेरि ॥ ८ ॥
कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार ।
मो संपति जदुपति सदा, विपति-विदारनहार ॥ ९ ॥
मकराकृति गोपाल कै, सोहत कुंडल कान ।
धरचौ मनौ हिय-धर समरु, ड्यौढ़ी लसत निसान ॥ १० ॥

या अनुरागी चित्त की, गति समझै नहिं कोय ।
ज्यों ज्यों बूढ़े स्याम रंग, त्यों त्यों उज्जलु होय ॥ ११ ॥
जपमाला, छापा, तिलक, सरै न एकौ काम ।
मन-कांच नाचै बृथा, सांचै रांचै रामु ॥ १२ ॥
घर घर डोलत दीन है, जनु जनु जांचत जाइ ।
दियै लोभ चसमा चखन, लघु पुनि बड़ौ लखाइ ॥ १३ ॥
मोहन-मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ ।
बसतु सु चित-अंतर तऊ, प्रतिविंबितु जग होइ ॥ १४ ॥
बड़ै न हूजै गुननु बिनु, विरद-बड़ाई पाइ ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ्यौ न जाइ ॥ १५ ॥
तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु ।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग, पग पग होत प्रयागु ॥ १६ ॥
कीजै चित सोई, तरे जिहिं पतितनु के साथ ।
मेरे गुन-औगुन-गननु, गनौ न गोपीनाथ ॥ १७ ॥
हरि, कीजति विनती यहै, तुमसौं बार हजार ।
जिहिं-तिहिं भांति डर-चौ रह्यौ, पर-चौ रहौं दरबार ॥ १८ ॥
गिर तैं ऊंचे रसिक-मन बूढ़े जहां -हजारु ।
वहै सदा पस, नरनु कौं, प्रेम-पयोधि पगारु ॥ १९ ॥
जिन दिन देख वे कुसुम, गई सु बीति बहार ।
अब, अलि रही गुलाब मैं, अपत कँटीली डार ॥ २० ॥
मैं तपाइ त्रयताप सौं, राख्यौ हियौ हमामु ।
मति कबहुँक आएँ यहां, पुलकि पसीजै स्यामु ॥ २१ ॥

स्वारथु, सुकृतु न, श्रमु बृथा, देखि बिहंग बिचारि ।
 बाज पराए पानि परि, तूँ पच्छीनु न मारि ॥ २२ ॥
 सीस-मुकट, कटि-काछनी, कर-मुरली उर माल ।
 इहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल ॥ २३ ॥
 न ए बिससियहि लखि नए, दुर्जन दुसह-सुभाइ ।
 आँटै परि प्रानन हरत, काँटै लौं लगि पाइ ॥ २४ ॥
 नर की अरु नल-नीर की, गति एकै कर जोइ ।
 जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ॥ २५ ॥
 बढ़त-बढ़त संपति-सलिलु, मन-सरोजु बढ़ि जाइ ।
 घटत-घटत सुन फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ॥ २६ ॥
 कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहि बीचु ।
 नल बल जलु ऊँचै चढ़ै; अन्त नीच कौ नीचु ॥ २७ ॥
 गुनी गुनी सबकै कहै, निगुनी गुनी न होतु ।
 सुन्यौ कहूँ तरु अरक तैं, अरक समान उदोतु ॥ २८ ॥
 दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यों न बढ़ै दुख दंडु ।
 अधिक अंधेरौ जग करत, मिलि मावस रबि चंडु ॥ २९ ॥
 भजन कह्यौ तातैं भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार ।
 दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तैं भज्यौ, गँवार ॥ ३० ॥
 बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु ।
 भलौ भलौ कहि छोड़ियै, खोटै ग्रह जपु, दानु ॥ ३१ ॥
 यह बिरिया नहि और की, तू करिया वह सोधि ।
 पाहन-नाव चढ़ाइ जिहि, कीने पार पयोधि ॥ ३२ ॥

अति अगाधु, अति औथरौ, नदी, कूप, सरु बाइ ।
 सौ ताकौ सागरु जहाँ, जाकी प्यास बुझाइ ॥३३॥
 मोर-मुकुट की चन्द्रिकनु, यौ राजत नंद मन्द ।
 मनु ससिसेखर की अकत, किय सेखर सत चन्द ॥३४॥
 अधर धरत हरि कै परत, ओठ-डीठि-पट-जोति ।
 हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र-धनुष रँग होति ॥३५॥
 कहै यहै श्रुति सुम्रत्यौ, यहै सयाने लोग ।
 तीन दबावत निसकहीं, पातक, राजा, रोग ॥३६॥
 जो सिर धरि महिमा महीं, लहियति राजा राइ ।
 प्रगटत जड़ता अपनि पै, सु मुकटु पहिरत पाइ ॥३७॥
 को कहि सकै बड़ेनु सौं, लखैं बड़ी यौ भूल ।
 दीने दर्ई गुलाब की, इन डारनु वे फूल ॥३८॥
 समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोइ ।
 मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ ॥३९॥
 या भव-पारावार कौं, उलँघि पार को जाइ ।
 तिय-छवि-छाया ग्राहिनी, ग्रहै बीचहीं आइ ॥४०॥
 दिन दस आदरु पाइकै, करि लै आपु बखानु ।
 जौ लगि काग ! सराध पखु, तौ लगि तौ सनमानु ॥४१॥
 मरतु प्यास पिंजरां परयो, सुआ समै कै फेर ।
 आदरु दै दै बोलियत, बाइसु बलि की बेर ॥४२॥
 इहीं आस अटक्यौ रहतु, अलि गुलाब कै मूल ।
 ह्वै ह्वै फेरि वसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल ॥४३॥

वे न इहाँ नागर बढी, जिन आदर तो आब ।
 फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ, गँवई गाँव गुलाब ॥४४॥
 चल्यो जाइ, हाँ को करै, हाथिनु के व्यापार ।
 नहिँ जानतु, इहिँ पुर बसै, धोबी, ओढ़, कुम्भार ॥४५॥
 मूढ़ चढ़ाए ऊ रहै; परचौ पीठि कच-भारु ।
 रहै गरै परि राखबौ, तउ हियै पर हारु ॥४६॥
 इक भीजै, चहलै परै, बूड़ै बहै हजार ।
 किते न औगुन जग करै, बै-नै चढ़ती बार ॥४७॥
 जाकैँ एकाएक हूँ, जग ब्यौसाइ न कोइ ।
 सो निदाघ फूलै फरै, आकु डहडहौ होइ ॥४८॥
 मीत न नीत गलीतु है, जौ धरियै धनु जोरि ।
 खाएँ खरचैँ जौ जुरै, तौ जोरियै करोरि ॥४९॥
 कहलाने एकत बसत, अहि मयूर, मृग बाघ ।
 जगतु तपोवन सौ कियौ, दीरघ-दाघ निदाघ ॥५०॥
 छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधुरी-गन्ध ।
 ठौर ठौर भौरत भपत, भौर भौर मधु-अंध ॥५१॥
 लटुवा लौँ प्रभु-कर गहै, निगुनी गुन लपटाइ ।
 वहै गुनी-कर तैं छुटै, निगुनियै है जाइ ॥५२॥
 लोपे कोपे इन्द्र लौँ, रोपे प्रलय अकाल ।
 गिरधारी राखे सबै, गो, गोपी, गोपाल ॥५३॥
 चितु दै देखि चकोर त्यों, तीजै भजे न भूख ।
 चिनगी चुगै अंगार की, चुगै कि चन्द-मयूख ॥५४॥

अपनै अपनै मत लगे, बादि मचावत सोरु ।
 ज्यों त्यों सबकों सेइबो, एकै नन्दकिसोरु ॥५५॥
 बुरौ बुराई जौ तजै, तौ चित खरौ डरातु ।
 ज्यों निकलंकु मयंकु लखि, गनै लोग उतपातु ॥५६॥
 ओछे बड़े न ह्वै सकै, लगौ सतर ह्वै गैन ।
 दीरघ होहि न नैक हूँ, फारि निहारै नैन ॥५७॥
 तौ, बलियै भलियै बनी, नागर नन्दकिसोर ।
 जौ तुम नीकै कै लख्यौ, मो करनी की ओर ॥५८॥
 मन मोहन सौं मोहु करि, तूँ घनस्यामु निहारि ।
 कुंज बिहारी सौं बिहारि, गिरधारी उर धारि ॥५९॥
 किती न गोकुल कुलबधू, किहि न काहि सिख दीन ।
 कौने तजी न कुल गली, ह्वै मुरली-सुर-लीन ॥६०॥
 इन दुखिया अखियान कौं, सुखु सिरज्यौई नाहि ।
 देखै बनै न देखतै, अनदेखै अकुलाहि ॥६१॥
 को छूट्यौ इहि जाल परि, कत, कुरंग, अकुलात ।
 ज्यों ज्यों सुरभि भज्यौ चहत, त्यों त्यों उरभत जात ॥६२॥
 चिरजीवौ जोरी, जुरै, क्यों न सनेह गम्भीर ।
 को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥६३॥
 ज्यों ह्वैहौ, त्यों होऊँगौ, हौं हरि, अपनी चाल ।
 हठु न करौ, अति कठिनु है, मो तारिबौ गोपाल ॥६४॥

नरोत्तम

जीवन-परिचय

रचना-काल सं० १६०२ के लगभग

नरोत्तमदास सीतापुर जिले के बाड़ी नामक कसबे के निवासी थे । इनकी जाति तथा जन्म और मृत्यु-तिथि का उल्लेख कहीं नहीं मिला । शिवसिंह-सरोज में इनका सं० १६०२ में वर्तमान रहना लिखा है, अतः इतने ही से सन्तुष्ट रहना चाहिए कि इनका रचना-काल सं० १६०२ के लगभग है ।

इनकी केवल एक छोटी-सी रचना 'सुदामा-चरित' उपलब्ध है । पर ये इस एक रचना ही से अमर और हिन्दी के बड़े-बड़े कवियों की कोटि में विराजमान हो गए हैं । यद्यपि सुदामा-चरित छोटा-सा काव्य है किन्तु इनकी रचना बहुत ही सरस, प्रौढ़ तथा हृदयग्राहिणी है और कवि की भावुकता का परिचय देती है । दरिद्रता—गरीबी का जैसा सुन्दर सजीव चित्र नरोत्तमदास ने इस काव्य में अंकित किया है वैसा अन्य कोई भी कवि नहीं कर पाया । वर्णन की विशदता और भावों की उत्कृष्टता के साथ-ही-साथ भाषा भी अत्यन्त परिमार्जित प्राञ्जल एवं सुव्यवस्थित है । इस प्रकार भव्य भावों के साथ-साथ कोमलकान्त पदावली सोने में सुगन्धि का काम कर रही है । इनकी कविताओं में शब्दाडम्बर या अनावश्यक और भरती का एक भी शब्द नहीं है । भाषा और भावों की ऐसी उत्कृष्टता रीतिकालीन अन्य कवियों में बहुत ही कम देखने में आती है । इन्हीं गुणों के कारण पाठक सुदामा-चरित पढ़ते-पढ़ते आत्मविभोर-सा हो जाता है । 'ध्रुव-चरित' भी इनकी प्राप्य रचना कही जाती है ।

सुदामा-चरित्र

स्त्री—

लोचन कमल दुख मोचन तिलक भाल,
स्रवननि कुण्डल मुकुट धरे माथ हैं ।
ओढ़े पीत वसन गरे में बैजयन्ति माल,
संख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ हैं ॥
कहत नरोत्तम संदीपनि गुरु के पास,
तुम ही कहत हम पढ़े एक साथ हैं ।
द्वारिका के गये हरि दारिद्र्य हरेंगे नाथ,
द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं ॥

सुदामा—

सिच्छक हों सिगरे जगको तिय ! ताको कहा अब देति है सिच्छा ।
जे तपकै परलोक सुधारति संपति की तिनके नहिं इच्छा ॥
मेरे हिय हरि के पद पंकज बार हजार लै देखु परिच्छा ।
औरन को धन चाहिये बावरि ब्राह्मन को धन केवल भिच्छा ॥

स्त्री—

कोदों सवां जुरतो भरि पेट, न चाहती हों दधि दूध मठौती ।
सीत व्यतीत भयो सिसियातहि, हों हठती पै तुम्हें न हठौती ॥
जौ जानती न हितू हरि सो तुम्हें काहे को द्वारिका पेलि पठौती ।
या घर ते कबहूँ न गयो पिय ! दूटो तबो अरु फूटी कठौती ॥

सुदामा—

छाँड़ि सबै तक तोहि लगी बक आठहु जाम यहै जक ठानी ।

जातहि दैहैं लदाय लढ़ा भरि लैहों लदाय यही जिय जानी ॥

✓ पावै कहां तें अटारी-अटा जिनके विधि दीन्हों है दूटी-सी छानी ।
जो पै दरिद्र लिखो है ललाट तौ काहू पै मेटि न जात अजानी ॥

स्त्री—

फाटे पट दूटी छानि खायौ भीख माँगि आनि

बिना जग्य बिमुख रहत देव मित्रई ।

वे हैं दीनबन्धु दुखी देखिकै दयालु ह्वै हैं,

दैहैं कुछ भलो सो हों जानत अगत्रई ॥ ?

द्वारिका लौं जात पिय ! के तौ अलसात तुम,

काहे को लजात भई कौन सी विचित्रई ।

जौ पै सब जनम दरिद्र ही सतायौ तौ पै,

कौन काज आइहै कृपानिधि की मित्रई ॥

सुदामा—

तैं तौ कही नीकी सुनि बात हित ही की यही,

रीति मित्रई की नित प्रीति सरसाइए ।

मित्र के मिले तें वित्त चाहिए परस्पर,

मित्र के जो जेंइए तो आपहू जेंवाइए ॥

वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,

तहां यहि रूप जाय कहा सकुचाइए ।

सुख-दुख करि दिन काटे ही बनेंगे भूलि—

बिपत्ति परे पै द्वार मित्र के न जाइए ॥

स्त्री--

हूँ कनावड़ो बार हजार लौं जौ हितु दीनदयाल सो पाइए ।
तीनहुँ लोक के ठाकुर हैं तिनके दरबार में जात न लजाइए ॥
मेरी कही जिय में धरिकै पिय ! भूलि न और प्रसंग चलाइए ।
और के द्वार सों काज कहा पिय ! द्वारिका नाथ के द्वार सिधाइए ॥

सुदामा—

द्वारिका जाहूँ जू द्वारिका जाहूँ जू आठहुँ जाम यहै जक तेरे ।
जौ न कह्यौ करिए तौ बड़ौ दुख जैए कहां अपनी गति हेरे ॥
द्वार खरे प्रभु के छरिया तहँ भूपति जान न पावत नेरे ।
पान सुपारी तैं देखु बिचारकै भेंट कौं चारि न चाउर मेरे ॥

यह सुनिकै तब ब्राह्मनी, गई परोसन पास ।
पाव सेर चाउर लिए, आई सहित हुलास ॥
सिद्धि करो गनपति सुमरि, बांधि दुर्पाटिया खूँट ।
माँगत खात चले तहाँ, मारन बाली बूँट ॥

दीठि चकाचौंध गई देखत सुवर्नमई,
एक तें सरस एक द्वारिका के भौन हैं ॥

देखत सुदामै धाय पुरजन गहे पाँय,
“कृपा करि कहौ बिप्र कहाँ कोन्हों गौन हैं?”

“धीरज अधीर के, हरन पर पीर के,
बताओ बलवीर के भवन यहाँ कौन हैं?”

द्वारपाल—

सीस पगा न भगा तन में प्रभु ! जानै को आहि, बसै केहि ग्रामा ।
 धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानह को नहि सामा ॥
 द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा ।
 पूछत दीनदयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा ॥
 लोचन पूरि रहे जल सों प्रभु दूरि ते देखत ही दुख मेख्यौ ।
 सोच भयो सुरनायक के कलपद्रुम के हिय मांभ खखेख्यौ ॥
 कंप कुबेर हिये सरसों, परसे पग जात सुमेरु समेख्यौ ।
 रंक ते राव भयो तबहीं जबहीं भरि अंक रमापति भैंख्यौ ॥
 ऐसे बेहाल बिवाइन सों पग कंटक जाल लगे पुनि जोए ।
 हाय महादुख पायौ सखा ! तुम आए इतै ना कितै दिन खोए ॥
 देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोए ।
 पानी परात के हाथ छुयौ नहि नैनन के जल सों पग धोए ॥

तन्दुल तिय दीन्हें हुते, आगे धरियो जाय ।

देखि राज संपति विभव, दै नहि सकत लजाय ॥

अन्तरजामी आपु हरि, जानि भगत की रीति ।

सुहृद सुदामा विप्र सों प्रगट जनार्द्र प्रीति ॥

श्रीकृष्ण—

कछु भाभी हम कौं दियौ, सो तुम काहे न देत ।

चाँपि पोटरी काँख में, रहे कहौ केहि हेत ॥

आगे चना गुरु मात दए ते लए तुम चाबि हमें नहि दीने ।

स्याम कछौ मुसकाय सुदामा सों, चोरी की बानि में हौ जू प्रबीने ॥

पोटरी काँख में चाँप रहे तुम खोलत नाहिं सुधा-रस-भीने !
पाछिली बानि अजौ न तजी तुम तैसेई भाभी के तन्दुल कीने ॥

खोलत सकुचत गाँठरी, चितवत हरि की ओर ।
जीरन पट फटि छुटि परे, बिखरि गए तेहि ठौर ॥
एक मुठी हरि भरि लई, लीन्ही मुख में डारि ।
चवत चबाउ करन लगे चतुरानन त्रिपुरारि ॥

काँप उठी कमला मन सोचत 'मो सों कहा हरि कौ मन औँको ?'
रिद्ध कँपी सब सिद्धि कँपी नव निद्धि कँपी बम्हना यह धौँ को ?
सोच भयो सुरनायक कों जब दूसरि बार लियौ भरि भौँको ।
मेरु डरयो बकसैं जनि मोहिं कुबेर चबावत चाउर चौँको ॥

हूल हियरा मैं, सब कानन परि है टेर,
'भेंटत सुदामै स्याम चाबि न अवात ही ।'
कहै नरोत्तम रिद्ध-सिद्धिन मैं सोर भयौ,
ठाढ़ी थरहरैं और सोचैं कमला तहीं ॥
नाकलोक, नागलोक, ओक-ओक थोक-थोक,
ठाढ़े थरहरें मुख सूखे सब गातहीं ।
हालो परो थोकन मैं, लालो परो लोकन मैं,
चालो परो चक्रन मैं चाउर चवातहीं ॥

भौन भरे पकवान मिठाइन लोग कहै निधि हैं सुषमा के ।
साँझ सवेरे पिता अभिलापत दाख न चाखत सिंधु छमा के ॥
बाम्हन एक कोउ दुखिया सेर-पावक चाउर लायौ समा के ।
प्रीति की रीति कहा कहिये तेहि बैठि चबावत कंत रमा के ॥

मुठी तीसरी भरत ही, रुकुमिनि पकरी बाँह ।
 'ऐसी तुम्हें कहा भई, संपत्ति की अनचाह' ॥
 कही रुकुमिनि कान में, यह धौं कौन मिलाप ।
 करत सुदामहि आप सों, होत सुदामा आप ॥

रूपै के रुचिर थार पायस सहित सिता,
 जीती जिन सोभा है सरद हू के चन्द की ।
 दूसरे पहीति-भात सोंधो सुरभी कौ घृत,
 फूले-फूले फुलका प्रफुल्ल द्रुति मन्द की ॥
 पापर मुँगरी बरा व्यंजन अनेक, प्रीति,
 देवता बिलोकि रहे देवकी के नन्द की ।
 या विधि सुदामाजू कों आछे कै जंवाय प्रभु,
 पाछे ते पछयावरि परोसी आनि कन्द की ॥

सात दिवस यही विधि रहे, दिन दिन आदर भाव ।
 चित्त चल्यो घर चलन कौं, ताकर सुनौ बनाव ॥
 देनो हुतौ सो दे चुके, विप्र न जानी गाथ ।
 चलती बेर गुपालजू, कछू न दीन्हों हाथ ॥

सुदामा—

वह पुलकनि वह उठि मिलनि, वह आदर की भाँति ।
 वह पठवनि गोपाल की, कछू न जानी जाति ॥
 घर घर कर ओड़त फिरे, तनक दही के काज ।
 कहा भयो जो अब भयौ, हरि को राज समाज ॥

हौं इत कब आवत हुतौ, वाही पक्यौ ठेलि ।
 कहिहौं धनसौं जाइकै, अब धन धरौं सकेलि ॥
 बालापन के मित्र हैं, कहा देउँ मैं साप ।
 जैसों हरि हम कों दियो, तैसो पइहै आप ॥
 प्रीति आरसी विमल है, सब कोउ सेवै जानि ।
 कपट मोरचा लगत ही, होत दरस की हानि ॥
 'इतनो मम आदर कियो, दियो न कछु मोहि स्याम ।
 या प्रकार सोचत चल्यो, विप्र आपने धाम ॥

नौ गुनधारी छगुन सों, तिगुना मध्ये जाय ।

लायौ चापल चौगुनी, आठौं गुननि गँवाय ॥

और कहा कहिए जहाँ, कञ्चन ही के धाम ।
 निपट कठिन हरि को हियो, मोकों दियो न दाम ॥

मीराबाई

जीवन-परिचय

जन्म—सं० १५७३ मेड़ता । मृत्यु—लगभग सं० १६२० द्वारिका ।

सर्वश्रेष्ठ कृष्ण-भक्त स्त्री कवयित्री मीराबाई मेड़ता के राव रत्नसिंह की पुत्री व महाराणा सांगा के सुपुत्र भोजराज की पत्नी थीं । विवाह के सात वर्ष के पश्चात् ही वे विधवा हो गईं । आरम्भ ही से वे भगवान् कृष्ण की अनन्य भक्त थीं । विधवा होने पर उनकी यह भक्ति पराकाष्ठा पर पहुँच गई । अब वे श्रीकृष्ण की पति-रूप में उपासना करने लगीं । साधु-संगति, श्रीकृष्णलीला-चर्चा, पूजा-अर्चा को छोड़ अब उन्हें कोई दूसरा काम नहीं रह गया । इस पर इनका देवर विक्रमादित्य बहुत रुष्ट रहने लगा और विरोध करने लगा । यहाँ तक कि एक बार तो उसने विष-मिश्रित दूध भी पीने के लिए भेजा, जिसे सहर्ष वे पी गईं । किन्तु उस हलाहल विष का कुछ भी प्रभाव न हुआ । अन्त में रात-दिन के विरोध को न सहकर वे वृन्दावन की यात्रा को चली गईं । इससे पूर्व उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास जी से निम्नलिखित पत्र लिखकर पूछा था कि ऐसी परिस्थिति में मेरा क्या कर्तव्य है:—

स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषण दूषण हरन गोसाई ।
बारहिं बार प्रनाम करहुँ, अब हरहु सोक समुदाई ॥

घर के स्वजन हमारे जेते, सबन्ह उपाधि बढ़ाई ।
 साधु संत अरु भजन करतु मोहि देत कलेष महाई ॥
 मेरे मात पिता के सम हों हरि भक्तन्ह सुखदाई ।
 हम को कहा उचित करवो है, सो लिखिए समुभाई ॥

इस पर गोस्वामी जी ने विनयपत्रिका का यह पद लिख कर

भेजा:—

जाके प्रिय न राम वैदेही ।

सो नर तजिए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥

नाते सबे राम के मनियत सुखद सुहृद जहां लौं ।

अँजन कहा आँखि जो फूटे, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥

वृन्दावन से वे द्वारिका चली गईं ।

मीरा की भक्ति माधुर्यभाव से परिपूर्ण है । उनकी कविता की उत्कृष्टता को देखते हुए, समालोचक जगत ने उन्हें सूर और तुलसी के समान माना है । कृष्ण-भक्त स्त्री कवियों में उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ है । जैसा कि पहले कहा गया है, वे अपने इष्टदेव कृष्ण की उपासना प्रियतम या पति के रूप में करती थीं । इस प्रकार की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य है । फलतः सूक्तियों की 'हाल' की दशा का इन कृष्ण-भक्तों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है । इनकी रचनाएँ कुछ तो राजस्थानी-मिश्रित भाषा में हैं और कुछ शुद्ध साहित्यिक व्रजभाषा में । इनके निम्नलिखित चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं:—

१—नरसीजी का मायरा । २—गीत-गोविन्द टीका । ३—राग गोविन्द । ४—राग सोरठ के पद ।

पद

(१)

वसो मोरे नैनन में नदलाल ।

मोहनी मूरति, साँवरी सूरति, नैना बने विसाल ॥

मोर-मुकुट, मकराकृति कुंडल, अरुण तिलक दिये भाल ।

अधर सुधा-रस मुरली राजति, उर बैजंती माल ॥

छुद्र घंटिका कटितट सोभित, नूपुर-सबद रसाल ।

‘मीरा’ प्रभु संतन सुखदाई, भगत-बल्लल गोपाल ॥

(२)

मन रे परसि हरि के चरण ।

सुभग सीतल कँवल-कोमल, त्रिविध ज्वाला-हरण ॥

जिण चरण प्रहलाद पाले, इन्द्र-पदवी धरण ॥

जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी सरण ॥

जिण चरण ब्रह्मांड भेंक्यो, नख सिख सिरी धरण ॥

जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम-धरण ॥

जिण चरण गोवरधन धर्यो, इन्द्र को अब हरण ॥

दासी ‘मीरा’ लाल गिरधर, अगम तारण-तरण ॥

(३)

भज मन चरण-कँवल अविनासी ।

जेताइ दीसै धरण-गगन बिच, तेताइ सब उठ जासी ॥

इस देही का गरब न करणा, माटी में मिल जासी ॥

यो संसार चहर की बाजी, सांभ पड़-चां उठ जासी ।
 कहा भयो तीरथ व्रत कीने, कहा लिये करवत कासी ?
 कहा भयो है भगवा पहर-चां, घर तज भये संन्यासी ?
 जोगी होइ जुगत नहिं जाणी, उलट जनम फिर आसी ॥
 अरज करौं अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी ।
 'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी ॥

(४)

या मोहन के रूप लुभानी ।

सुन्दर बदन कमल-दल लोचन, बांकी चितवन मंद मुसकानी ॥
 जमना के तीरे तीरे धेन चरावै, बंसी में गावै मीठी बानी ॥
 तन मन धन गिरधर पर वारूँ, चरण-कँवल 'मीरा' लपटानी ॥

(५)

माई री मैं तो लियो गोविंदो मोल ।

कोई कहै छानै कोई कहै चौड़े, लियो री बजंता ढोल ॥
 कोई कहै मुंहघो कोई सुंहघो, लियो री तराजू तोल ।
 कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लिया री अमोलक मोल ॥
 या ही कूँ सब लोग जाणत है, लियो री आंखी खोल ।
 'मीरा' कूँ प्रभु दरसण दीज्यो, पूरब जनम कौ कोल ॥

(६)

देखत राम हँसे सुदामां कूँ, देखत राम हँसे ।

फाटी तो फूलड़ियां पांव उभाणो, चलतैं चरण घसे ।
 बालपणो का मित सुदामां, अब क्यूँ दूर बसे ।

कहा भावज ने भेंट पठाई, तांदुल तीन पसे ।
 कित गई प्रभु मोरी दूटी टपरिया, हीरा मोती लाल कसे ॥
 कित गई प्रभु मोरी गउअन बछिया, द्वारा बिच हँसती फसे ।
 'मीरा' के प्रभु हरि अविनासी, सरणे तोरे बसे ॥

(७)

नहीं ऐसो जनम बारंबार ।

का जाणूँ कल्लु पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार ॥
 बढ़त छिन-छिन घटत पल-पल, जात न लागै बार ।
 बिरछ के ज्यों पात दूटे, बहुरि न लागै डार ॥
 भौ-सागर अति जोर कहिये, अनंत ऊँडी धार ।
 राम-नाम का बाँध बेड़ा उतर परले पार ॥

(८)

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ।
 जाके सिर मोर मुकट, मेरो पति सोई ॥
 छांड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई ।
 संतन ढिंग बैठि बैठि, लोक लाज खोई ॥
 अँसुअन जल सींच-सींच, प्रेम-बलि बोई ।
 अब तो बेल फैल गई, आणंद-फल होई ॥
 भगति देखि राजी हुई, जगति देखि रोई ।
 दासी 'मीरा' लाल गिरधर, तारो अब मोई ॥

(६)

करम-गत टारे नाहिं टरे ।

सदबादी हरिचंद-से राजा, सो तो नीच घर नीर भरे ।
 पाँच पांडु अरु कुंती द्रोपदी, हाड हिमालै गरे ।
 जज्ञ कियो बलि लेण इन्द्रासण, सो पाताल धरे ।
 'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, बिख से अमृत करे ।

(१०)

मैंने राम रतन धन पायौ ।

बसत अमोलक दी मेरे सतगुर, करि किरपा अपणायौ ।
 जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सबै खोवायौ ।
 खरचै नहिं कोई चोर ना लेवै, दिन-दिन बढ़त सवायौ ।
 सत की नाव खेवटिया सतगुर, भव सागर तरि आयौ ।
 'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, हरखि-हरखि जस गायौ ॥

(११)

फागुण के दिन चार रे, होरी खेल माना रे ।

बिनि करताल पखावज बाजै, अणहद की भनकार रे ।
 बिनि सुर राग छतीसूँ गावै, रोम-रोम रंग सार रे ।
 सील संतोख की केसर घोली, प्रेम-प्रीत पिचकार रे ।
 उड़त गुलाल लाल भयो अंबर, बरसत रंग अपार रे ।
 घट के सब पट खोल दिये हैं, लोक-लाज सब डार रे ।
 होरी खेलि पीव घर आये, सोइ प्यारी पिय प्यार रे ।
 'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, चरण-कंवल बलिहार रे ॥

मतिराम

जीवन-परिचय

जन्म—सं० १६७४ तिकवाँपुर में ।

मृत्यु—सं० १७७३ ।

मतिराम की गणना रीतिकाल के प्रमुख कवियों में है । ये चिन्ता-मणि और भूषण के भाई कहे जाते हैं । ये बूँदी के महाराज भावसिंह के आश्रय में रहते रहे । मतिराम की रचना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसकी सरसता अत्यन्त स्वाभाविक है, न तो उसमें भावों की और न भाषा ही की कृत्रिमता है । जितने शब्द और वाक्य हैं वे सब भावव्यंजना ही में प्रयुक्त हुए हैं । सारांश यह है कि मतिराम की सी रसस्निग्ध और प्रसादपूर्ण भाषा रीतिकालिक इने-गिने ही कवियों में मिलती है ।

भाषा के समान ही इनके न तो भाव कृत्रिम हैं और न उनके व्यंजक व्यापार या चेष्टाएँ ही । भावों को आकाश पर चढ़ाने और दूर की कल्पना के फेर में ये नहीं पड़े । इनका सच्चा कवि-हृदय था । यदि ये रीतिकालीन परम्परा पर न चलकर अपनी स्वाभाविक प्रेरणा के अनुसार चल पाते तो और भी स्वाभाविक और सच्ची भाव-विभूति दिखाते, इसमें कुछ सन्देह नहीं । भारतीय जीवन से छाँटकर लिये गए इनके मर्मस्पर्शी चित्रों में जो भाव भरे हैं वे समान रूप से सबकी अनुभूति के अङ्ग हैं । इनका 'रसराज' परम मनोहर तथा अत्यन्त सरस ग्रन्थ है । इसके अतिरिक्त इनके ये ५ ग्रन्थ और हैं—ललित-ललाम, छन्दसार, साहित्यसार, लक्षणसार और मतिराम-सतसई ।

दोहे

मो मन तमतो महि हरौ राधा कौ मुख-चंद ।
 बढै जाहि लखि सिंधु लौं नंद - नंदन - आनंद ॥१॥
 मंजु गुञ्ज के हार उर मुकुट मोरपरपुञ्ज ।
 कुञ्ज बिहारी बिहरियै मेरेई मन - कुञ्ज ॥२॥
 राधा मोहन - लाल कौ जाहि न भावत नेह ।
 परियौ मुठी हजार दस ताकि आँखिनी खेह ॥३॥
 तेरी मुख-समता करी साहस करि निरसंक ।
 धूरि परी अरबिंद-मुख चंदहि लग्यौ कलंक ॥४॥
 गमृपति जित्यौ सुलंक सौं मृगलांच्छन मृदु हास ।
 मृग-चख जित्यौ सुनैन सौं मृग-मद जित्यौ सुवास ॥५॥
 कहा भयौ मतिराम हिय जौ पहरी नंदलाल ।
 लाल मोल पावै नहीं लाल गुञ्ज की माल ॥६॥
 गुन औगुन कौ तनकऊ प्रभु नहिं करत बिचार ।
 केतकि कुसुम न आदरत हर सिर धरत कपार ॥७॥
 निज बल कौ परिनाम तुम तारै पतित बिसाल ।
 कहा भयौ जु न हौं तरतु तुम खिस्याहु गोपाल ॥८॥
 निडर बटोही बाट में ऊखनि लेत उखारि ।
 अरे गरीब गँवार तैं काहै करत उजार ॥९॥
 बसिवे कौं निज सरबरनि सुर जाकौं ललचाहि ।
 सो मराल बकताल मै पैठन पावत नाहि ॥१०॥

अद्भुत या धन कौ तिमिर मो पै क्यौ न जाइ ।
 ज्यौं-ज्यौं मनिगन जगमगत त्यों-त्यों अति अधिकाइ ॥११॥
 कोटि कोटि मतिराम कहि जतन करौ सब कोइ ।
 फाटे मन अरु दूध मैं नेह न कबहूँ होइ ॥१२॥
 सुबरन बरन सुवास जुत सरस दलनि सुकुमार ।
 ऐसे चंपक कौ तजै तैंहीं भौर गँवार ॥१३॥
 सुबरन बेलि तमाल सौं घन सौं दामिनि देह ।
 तूँ राजति घनस्याम सौं राधे सरसि सनेह ॥१४॥
 अब तेरौ बसिबो इहाँ नाहिँन उचित मराल ।
 सकल सूखि पानिप गयौ भयौ पङ्कमय ताल ॥१५॥
 दुख दीनै हूँ सुजन जन छोड़त निज न सुदेस ।
 अगुरु डारियत आगि मैं करत सुवासित देस ॥१६॥
 सरद चाँदनी में प्रगट होत न तिय के अंग ।
 सुनत मंजु मंजीर अब सखी न छोड़ति संग ॥१७॥
 सुजस ओज-सौं साह-सुत सिवा सूरसिरदार ।
 सरद चंद आतप कियो सुचि आतप इक बार ॥१८॥
 पिसुन-बचन सज्जन चितै सकै न फोरि न फारि ।
 कहा करै लगि तोय मैं तुपक तीर तरवारि ॥१९॥
 अति सुठार अति ही बड़े पानिप भरे अनूप
 नाकमुक्त नैनानि सौं होड़ परी इहि रूप ॥२०॥
 ललित मंद कल हंस गति मधुर मंद मुसिक्याति ।
 चली सारदा बिसद-रुचि सरद - चाँदनी राति ॥२१॥

प्रीति द्वैज द्विजराज की कला कल्प करि चित्र ।
 जगत लोक बंदित उदित बढ़त मित्र जो मित्र ॥२२॥
 प्रतिबिंबित तो बिंब मैं भूतल भयौ कलंक ।
 निज निरमलता दोष यह मन मैं मानि मयंक ॥२३॥
 तिहि पुरान नव-द्वै पढ़ै जिहि जानी यह बात ।
 जो पुरान सो नव सदा नव पुरान ह्वै जात ॥२४॥
 सुखद साधुजन कौ सदा गजमुख दानि उदार ।
 सेवनीय सब जगत कौ जगमाया सुकुमार ॥२५॥
 मदरसमत्त मिलिद-गन गान मुदित गन-नाथ ।
 सुमिरत कवि मतिराम कै सिद्धि रिद्धि निधि हाथ ॥२६॥
 अङ्ग ललित सित-रंग पट अङ्ग राग अवतंस ।
 हंस - बाहिनी कीजियै बाहन मेरौ हंस ॥२७॥
 जो निसि दिन सेवन करै अरु जो करै विरोध ।
 तिन्हैं परम पद देत प्रभु कहौ कौन यह बोध ॥२८॥
 पगी प्रेम नंदलाल के हमैं न भावत जोग ।
 मधुप राजपद पाइकै भीख न माँगत लोग ॥२९॥
 देखत दीपति दीप की देत प्रान अरु देह ।
 राजत एक पतंग मैं बिना कपट कौ नेह ॥३०॥
 मो मन मेरी बुद्धि लैं करि हर कौ अनुकूल ।
 लै त्रिलोक की साहिबी दै धतूर को फूल ॥३१॥
 खल बचननि की मधुरई चारि साँप निज श्रौन ।
 रोम रोम पुलकित भए कहत मोह गहि मौन ॥३२॥

मुक्त-हार हरि कै हियै मरकत मनिमय होत ।
 पुनि पावत रुचि राधिका मुखमुसक्यानि उदोत ॥३३॥
 सरद चँद की चाँदिनी को कहियै प्रतिकूल ?
 सरद चँद की चाँदिनी कोक हियै प्रतिकूल ॥३४॥
 को हरि-बाहन जलधि-सुत को को ज्ञान-जहाज ?
 तहा चतुर उत्तर दियौ एक बचन द्विजराज ॥३५॥
 स्याम-रूप अभिराम अति सकल विमल गुन-धाम ।
 तुम निसि दिन मतिराम की मति बिसरौ मति राम ॥३६॥
 प्रतिपालक सेवक सकल खलनि दलमलत डांठि ।
 शंकर तुम सम साँकरै सबल साँकरै काटि ॥३७॥
 सेवक सेवा के सुने सेवा देव अनेक ।
 दीनबंधु हरि जगत है दीनबंधु हर एक ॥३८॥
 अधम अजामिल आदि जे हौं तिनकौ हौं राउ ।
 मोहूँ पर कीजै दया कान्ह दया दरियाउ ॥३९॥
 अनमिष नैन कहै न कछु समुझै सुनै न कान ।
 निरखै मोर-पखानि कै भयो पखान समान ॥४०॥
 भौर भाँवरै भरत है कोकिल - कुल मंडरात ।
 या रसाल की मंजरी सौरभ सुख सरसात ॥४१॥
 कासौं जात बखानि है आंब - कली - रस मित्त ।
 बिसरायौ जिहि जाति तैं चंचरीक कौ चित्त ॥४२॥
 निरखि तरनि कर-निकर कौ अरु बरनत आलोक ।
 होत प्रफुल्लित सोक तजि सकल कोकनद कोक ॥४३॥

कपट वचन अपराध तैं निपट अधिक दुखदानि ।
 जरे अङ्ग में संकु ज्यों होत बिधा की खानि ॥४४॥
 सरल बान जानै कहा प्रान-हरन की घात ।
 बंक भयंकर धनुष कौ गुन सिखवत उत्पात ॥४५॥
 होत जगत में सुजन कौ दुरजन रोकनहार ।
 केतकि कमल गुलाब के कंटक मय परिहार ॥४६॥
 फूलति कली गुलाब की सखि यहि रूप लखै न ।
 मनौ बुलावति मधुप कौ दें चुटकी की सैन ॥४७॥
 करौ कोटि अपराध तुम वाके हियैं न रोष ।
 नाह-सनेह-समुद्र में बूड़ि जात सब दोष ॥४८॥
 कौन भाँति कै बरनियै सुन्दरता नँद-नंद ।
 तेरे मुख की भीख लै भयौ ज्योतिमय चंद ॥४९॥
 दिन में सुभग सरोज हैं निसि में सुन्दर इंदु ।
 द्यौस राति हूं चारु अति तेरो बदन गोविंदु ॥५०॥
 रोस न करि जौ तजि चलयौ जानि अङ्गार गंवार ।
 छिति-पालनि की माल में तैही लाल सिंगार ॥५१॥
 देखैं हूँ बिन देखि हूँ लगी रहै अति आस ।
 कैसे हूँ न बुझाति है ज्यों सपने की प्यास ॥५२॥
 तरु हूँ रह्यौ करार कौ अब करि कहा करार ।
 उर धरि नंद कुमार कौ चरन कमल कुसुमार ॥५३॥
 तनु आगैं कौ चलतु है मन वाही मग लीन ।
 सलिल सोत में ज्यों चपल चलत चड़ाऊ मीन ॥५४॥

चयनिका

चयनिका

श्रीगुरुनाथ प्रभाव तैं होत मनोरथ सिद्धि ।
 धन तैं ज्यों तरु बेलि दल फूल फलन की वृद्धि ॥१॥
 भाव सरस समभक्त सबै भले लगैं यह भाय ।
 जैसे अवसर की कही बानी सुनत सुहाय ॥२॥
 नीकी पै फीकी लगै बिनु अवसर की बात ।
 जैसे बरनत युद्ध में रस सिंगार न सुहात ॥३॥
 फीकी पै नीकी लगै कहिए समय विचारि ।
 सब कै मन हरषित करै ज्यों विवाह में गारि ॥४॥
 जो जाको गुन जानहीं सो तिहि आदर देत ।
 कोकिल अबहु लेत है काग निबौरी लेत ॥५॥
 कहा होय उद्यम किए जो प्रभु ही प्रतिकूल ।
 जैसे उपजै खेत कौं करै सलभ निरमूल ॥६॥
 जाही तैं कछु पाइयै करियै ताकी आस ।
 रीते सरवर पै गए कैसे बुझत पियास ॥७॥
 जो जाही को ह्वै रहै सो तिहि पूरै आस ।
 स्वाति बूँद बिनु सघन में चातक मरत पियास ॥८॥
 गुन ही तऊ मनाइयै जो जीवन सुख भौन ।
 आग जरावत नगर तउ आग न आनत कौन ॥९॥
 रस अनरस समझै न कछु पढ़ै प्रेम की गाथ ।
 बीछू मन्त्र न जानई साँप पिटारे हाथ ॥१०॥
 अपनी पहुँच विचारिकै करतब करियै दौर ।
 तेते पाँव पसारियै जेती लॉची सौर ॥११॥

ओछे नर को प्रीति की दीनी रीति बताय ।
 जैसे छीलर ताल जल घटत घटत घट जाय ॥१२॥
 रहे समीप बड़ेन के होत बड़ो हित मेल ।
 सब ही जानत बढ़त है वृद्ध बराबर बेल ॥१३॥
 फेर न है है कपट सों जो कीजै व्यौपार ।
 जैसें हाँडी काठ की चढ़ै न दूजी बार ॥१४॥
 नैना देत बताय सब हिय कौ हेत अहेत ।
 जैसें निरमल आरसी भली बुरी कह देत ॥१५॥
 अति परचै तैं होत है अरुचि अनादर भाय ।
 मलयागिरि की भीलनी चन्दन देत जराय ॥१६॥
 जासों जैसौ भाव सो तैसौ ठानत ताहि ।
 ससिहि सुधाकर कहत कोउ कहत कलंकी आहि ॥१७॥
 सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय ।
 पवन जगावत आग कौ दीपहि देत बुझाय ॥१८॥
 अति हठ मत कर हठ बढ़ै बात न करिहै कोय ।
 ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों भारी होय ॥१९॥
 लालच हू ऐसौ भलौ जासों पूरे आस ।
 चाटेहु कहूँ ओस के मिटै काहु की प्यास ॥२०॥
 जो जेहि भावै सो भलौ गुन को कछु न बिचार ।
 तज गजमुक्ता भीलनी पहरति गुंजाहार ॥२१॥
 एक भले सब कौ भलौ देखौ सबद विवेक ।
 जैसे सत हरिचन्द के उधरै जीव अनेक ॥२२॥

कलियाँ थीं धड़ले भये धड़लियों भये सुपैदु ।
 नानक मता मतो दियाँ उज्जरि गइया खेदु ॥१॥
 जागो रे जिन जागना अब जागनि की बारि ।
 फेरि कि जाग जागो नानका जब सोवउ पाँव पसारि ॥२॥
 मित्राँ दोस्त माल धन छाँड़ि चले अति भाइ ।
 संगि न कोई नानका उह हंस अकेला जाइ ॥३॥
 हिरदे जिनके हरि बसे से जन कहियहि सूर ।
 कही न जाई नानका पूरि रह्या भरपूर ॥४॥
 सूरा एकन आँखियन जो लड़नि दलाँ में जाय ।
 सूरे सोई नानका जो मंनगु हुकुम रजाय ॥५॥

—गुरु ना०

✽

✽

✽

घीव दूध में रमि रह्या व्यापक सब ही ठौर ।
 दादू बक्ता बहुत हैं मथि काढ़ें ते और ॥१॥
 दादू दीया है भला दिया करो सब कोय ।
 घर में धरा न पाइये जो कर दिया न होय ॥२॥
 कहि कहि मेरी जीभ रहि सुणि सुणि तेरे कान ।
 सतगुरु बपुरा क्या करै जो चेला मूढ़ अजान ॥३॥
 सुख का साथी जगत सब दुख का नाहीं कोइ ।
 दुख का साथी साइयाँ दादू सतगुरु होइ ॥४॥
 दादू देख दयाल कौ सकल रहा भरपूर ।
 रोम रोम में रमि रह्यो तू जिनि जानै दूर ॥५॥

—दादू

जहाँ जहाँ बच्छा फिरै तहाँ तहाँ फिरै गाय ।
 कहें मलूक जहं संतजन तहाँ रमैया जाय ॥१॥
 अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम ।
 दास मलूका यों कहै सब के दाता राम ॥२॥
 मलुका सोई पीर है जो जानै पर पीर ।
 जो पर पीर न जानई सो काफिर बेपीर ॥३॥
 माला जपों न कर जपों जिभ्या कहों न राम ।
 सुमिरन मेरा हरि करै मैं पायो बिसराम ॥४॥
 दया धर्म हिरदै बसै बोलै अमृत बैन ।
 तेई ऊँचे जानिये जिनके नीचे नैन ॥५॥

—मलूकदास



वैद्य हमारे राम जी औषधि हू हरि नाम ।
 सुन्दर यहै उपाय अब सुमिरण आठौ जाम ॥१॥
 सुन्दर संसय को नहीं बड़ो महुच्छव ऐह ।
 आतम परमातम मिलो रहो कि बिनसो देह ॥२॥
 सुन्दर जो गाफिल हुआ तौ वह साँई दूर ।
 जो बन्दा हाजिर हुआ तौ हाजराँ हजूर ॥३॥
 सुन्दर पंछी विरछ पर लियो बसेरा आनि ।
 राति रहे दिन उठि गये त्यों कुटुम्ब सब जानि ॥४॥
 लौन पूतरी उदधि मैं थाह लेन कौं जाइ ।
 सुन्दर थाह न पाइये बीचही गई बिलाइ ॥५॥

—सुन्दरदास

'मान' करहु जो करि सकहु कथनी अकथ अपार ।
 कथे न कर कछु आवइ करनी करतब सार ॥१॥
 कौन भरोसा देह का छोड़हु जतन उपाय ।
 कागद की जस पूतरी पानि परे घुलि जाय ॥२॥
 तब लहु सहिये बिरह दुख जब लगि आव सो बार ।
 दुःख गये तब सुख है जानै सब संसार ॥३॥
 सब कहँ अमिरित पाँच है बंगाली कहँ सात ।
 केला कांजी पान रस साग माछरी भात ॥४॥
 छत्री सुनि जो ना करे तिय अरु गाय जोहारि ।
 पुहुमी कुल गारि चढ़ै सरग होय मुख कारि ॥५॥

—उसमान

* * *
 घर घोड़ा पैदल चलै तीर चलावै बीन ।
 थाती धरै दमाद घर जग में भकुवा तीन ॥१॥
 बिन बैलन खेती करै बिन भैयन के रार ।
 बिन मेहरारू घर करै तीनों निपट लबार ॥२॥
 खेती पाती बीनती औ घोड़े की तंग ।
 अपने हाथ सँवारिये लाख लोग हों संग ॥३॥
 जेकर ऊँचा बैठना जेकर खेत निचान ।
 ओकर वैरी का करै जेकर भीत दिवान ॥४॥
 काँटा बुरा करील का औ बदरी का घाम ।
 सौत बुरी है चून की औ साभे का काम ॥५॥

—घाघ

कल किशलय कोमल कमल पदतल सम नहिँ पायँ ।
 इक सोचत पियरात नित इक सकुचत भरि जायँ ॥१॥
 विलसति यदुपति नखनितति अनुपम द्युति दरशाति ।
 उडुपति युतउडु अवलि लखि सकुचि सकुचि दुरि जात ॥२॥
 सविता-दुहिता श्यामता सुर-सरिता नख-ज्योति ।
 सुतल - अरुणता भारती चरण त्रिवेणी होति ॥३॥
 चारु चरण की आँगुरी मो पै बरणि न जाइ ।
 कमल कोश की पाँखुरी पेखत जिनहिँ लजाइ ॥४॥
 पद्मनाभ के नाभि की सुखमा सुठि सरसाय ।
 निरखि भानुजा धार को भ्रमि-भ्रमि भँवर भुलाय ॥५॥

—रघुराज

*

*

*

धनहिँ राखिये विपति हित तिय राखिय धन त्यागि ।
 तजिये गिरधरदास दोउ आतम के हित लागि ॥१॥
 लोभ न कबहूँ कीजिये या में विपति अपार ।
 लोभी को विश्वास नहीं करे कोउ संसार ॥२॥
 लोभ सरिस अवगुन नहीं तप नहिँ सत्य समान ।
 तीरथ नहिँ मन शुद्धि सम विद्या सम धन आन ॥३॥
 सकल वस्तु संग्रह करै आवै कोउ दिन काम ।
 बखत परे पर ना मिलै माटी खरचे दाम ॥४॥
 कारज करिय विचारिकै कर्म लिखी सो होय ।
 पाछे उपजै ताप नहिँ निन्दा करै न कोय ॥५॥

—गिरधरदास

गिरधर की कुण्डलियाँ

साईं बेटा-बाप के बिगरे भयो अकाज ।
 हरिनाकस्यप कंस को गयउ दुहन को राज ॥
 गयउ दुहन को राज बाप-बेटा में बिगरी ।
 दुस्मन दावागीर हँसे महिमंडल नगरी ॥
 कह 'गिरधर' कविराय जुगन याही चलि आई ।
 पिता पुत्र के बैर नफा कहु कौने पाई ॥१॥
 जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजै संग ।
 जो चाहै लेतो बनै तो करि डारु निपंग ॥
 तो करि डारु निपंग भूलि परतीति न कीजै ।
 सौ सौगंदै खाय चित्त में एक न दीजै ॥
 कह 'गिरधर' कविराय खटक जैहै नहिं ताकी ।
 अरि समान परिहरिय हरी धन धरती जाकी ॥२॥
 दौलत पाय न कीजिये सपने में अभिमान ।
 चंचल जल दिन चारिको ठाँउ न रहत निदान ॥
 ठाँउ न रहत निदान जियत जग में जस लीजै ।
 मीठे बचन सुनाय विनय सबही की कीजै ॥
 कह 'गिरधर' कविराय अरे यह सब घट तौलत ।
 पाहुन निसिदिन चारि रहत सबही के दौलत ॥३॥
 गुन के गाहक सहस नर बिनु गुन लहै न कोय ।
 जैसे काला कोकिला शब्द सुनै सब कोय ॥
 शब्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन ।
 दोऊ को रँग एक काग सब भये अपावन ॥

कह 'गिरधर' कविराय सुनो हो ठाकुर मन के ।
 बिनु गुन लहै न कोय सहज नर-गाहक गुन के ॥४॥
 साईं सब संसार में मतलब का व्यवहार ।
 जब लग पैसा गाँठ में तब लग ताको यार ॥
 तब लग ताको यार यार सँग ही सँग डोलैं ।
 पैसा रहा न पास यार मुख से नहिं बोलैं ॥
 कह 'गिरधर' कविराय जगत यहि लेखा भाई ।
 करत बेगरजी प्रीति यार बिरला कोइ साईं ॥५॥
 साईं अवसर के पड़े को न सहे दुख-द्वंद ।
 जाय बिकाने डोम-घर वै राजा हरिचंद ॥
 वै राजा हरिचंद करैं मरघट रखवारी ।
 धरे तपस्वी-वेष फिरे अर्जुन बलधारी ॥
 कह 'गिरधर' कविराय तपै वह भीम रसोई ।
 को न करै घटि काम परे अवसर के सोई ॥६॥
 लाठी में गुण बहुत हैं सदा राखिये संग ।
 गहिर नदी नारा जहाँ तहाँ बचावै अंग ॥
 तहाँ बचावै अंग भूपति कुत्ता कहँ मारै ।
 दुश्मन दावागीर होयँ तिनहूँ को मारै ॥
 कह 'गिरधर' कविराय सुनो हो धूर के बाटी ।
 सब हथियारन छाँड़ि हाथ महँ लीजै लाठी ॥७॥
 बिना बिचारे जो करै सो पीछे पछिताय ।
 काम बिगारै आपनो जग में होत हँसाय ॥

जग में होत हँसाय चित्त में चैन न पावै ।
 खान पान सन्मान राग रँग मनहि न भावै ॥
 कह 'गिरधर' कविराय दुःख कछु टरत न टारे ।
 खटकत है जिय माँहि कियो जो बिना बिचारे ॥८॥
 बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेइ ।
 जो बनि आवै सहज में ताही में चित देइ ॥
 ताही में चित देइ बात जोई बनि आवै ।
 दुरजन हँसै न कोइ चित्त में खता न पावै ॥
 कह 'गिरधर' कविराय यहै करु मन परतीती ।
 आगे को सुख समुझि होइ बीती सो बीती ॥९॥
 साँई अपने चित्त की भूलि न कहिये कोइ ।
 तब लग मन में राखिये जब लग कारज होइ ॥
 जब लग कारज होइ भूलि कबहुँ नहि कहिये ।
 दुरजन हँसे न कोय आप सियरे ह्वै रहिये ॥
 कह 'गिरधर' कविराय बात चतुरन के ताई ।
 करतूती कहि देत आप कहिये नहि साँई ॥१०॥
 साँई अपने भ्रात को कबहुँ न दीजै त्रास ।
 पलक दूर नहि कीजिये सदा राखिये पास ॥
 सदा राखिये पास त्रास कबहुँ नहि दीजै ।
 त्रास दियो लंकेश ताहि की गति सुनि लीजै ॥
 कह 'गिरधर' कविराय राम सों मिलियो जाई ।
 पाय विभीषण राज लंकपति बाज्यो साँई ॥११॥

कृतघन कबहुँ न मानहीं कोटि करै जो कोय ।
 सरबस आगे राखिये तऊ न अपनो होय ॥
 तऊ न अपनो होय भले की भली न मानै ।
 काम काढ़ि चुप रहै फेरि तिहि नहि पहिचानै ॥
 कह 'गिरधर' कविराय रहत नितही निर्भय मन ।
 मित्र शत्रु सब एक दाम के लालच कृतघन ॥१२॥

*

*

*

सरस कविन ये हृदय को वेधत है सो कौन ।
 असमभवार सराहिवो समभवार को मौन ॥१॥
 पिता नीर परसै नहीं दूर रहै रवि यार ।
 ता अम्बुज में मूढ अलि अरुभि परै अविचार ॥२॥
 वह वृन्दावन सुखसदन कुञ्ज कदम की छाँहि ।
 कनकमयी यह द्वारिका ताकी रज सम नाहि ॥३॥
 जस जाग्यो सब जगत में भयो अजीरन तोय ।
 अपजस की गोली दऊँ ततकाले सुधि होय ॥४॥
 जो मेढ़ा पीछे हटै केहरिया छपकन्त ।
 जो दुर्जन हँसिकै मिलै तबै बचैयो कन्त ॥५॥
 दगाबाज की प्रीति यों बोलत ही मुसकात ।
 जैसे मेंहदी पात में लाली लखी न जात ॥६॥
 निकट रहे आदर घटै दूर रहे दुख होय ।
 सम्मन या संसार में प्रीति करौ जनि कोय ॥७॥

दरिया सोता सकल जग जानत नहीं कोय ।
 जागे में फिर जागना जागा कहिये सोय ॥८॥
 बुझा चल सुनार दे (जत्थे) गहना गढ़िये लाख ।
 सूरत आपो आपनी तू इको रूप ये आख ॥९॥
 धन जननी धन भूमि धन धन नगरी धन देस ।
 धन करनी धन सुकुल धन जहाँ साधु परबेस ॥१०॥
 भीखा केवल एक है किरतिम भयो अनन्त ।
 एकै आतम सकल घट यह गति जानहि सन्त ॥११॥
 जो जन जाकी सरन है सरन गहे की लाज ।
 मीन धार सन्मुख चलै बहे जात गजराज ॥१२॥
 पात भरंते इमि कहैं सुन तरवर बन राय ।
 अब के बिल्लुरे कब मिलैं दूर परेंगे जाय ॥१३॥
 सारंग ने सारंग गह्यो सारंग बोल्यो आय ।
 जो सारंग सारंग कहै सारंग मुख ते जाय ॥१४॥
 पान पुराना घी नया औ कुलवन्ती नारि ।
 चौथी पीठ तुरङ्ग की सरग निसानी चारि ॥१५॥
 —विविध

Library Sri Pratap College,
 Srinagar.

